प्रकाशक

रामकृष्ण शर्मा
हिन्दी साहित्य संसार
नई सड़क, दिल्ली।

मूल्य
"दो रुपये पचास नये पैसे"

मुद्रक
नया हिन्दुस्तान प्रेस,
चाँदनी चौक, दिल्ली।

द्वितीय खण्ड

तृतीय खण्ड

प्रथम खण्ड

पृथ्वीराज रासो का आलोचनात्मक एवं गवेषणात्मक विवेचन

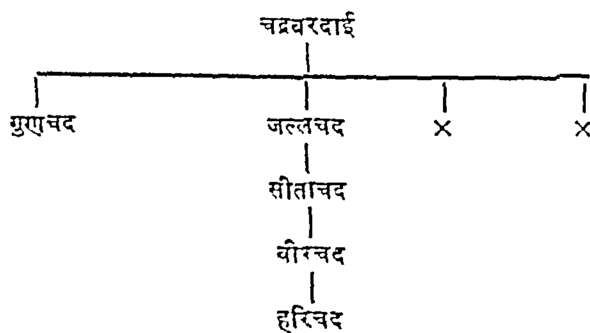
था। गोरी ने चद से पृथ्वीराज के सबध में प्रश्न किया और चद ने स्री शका के समाधान के हेतु रासो की कथा सवाद रूप में कही।

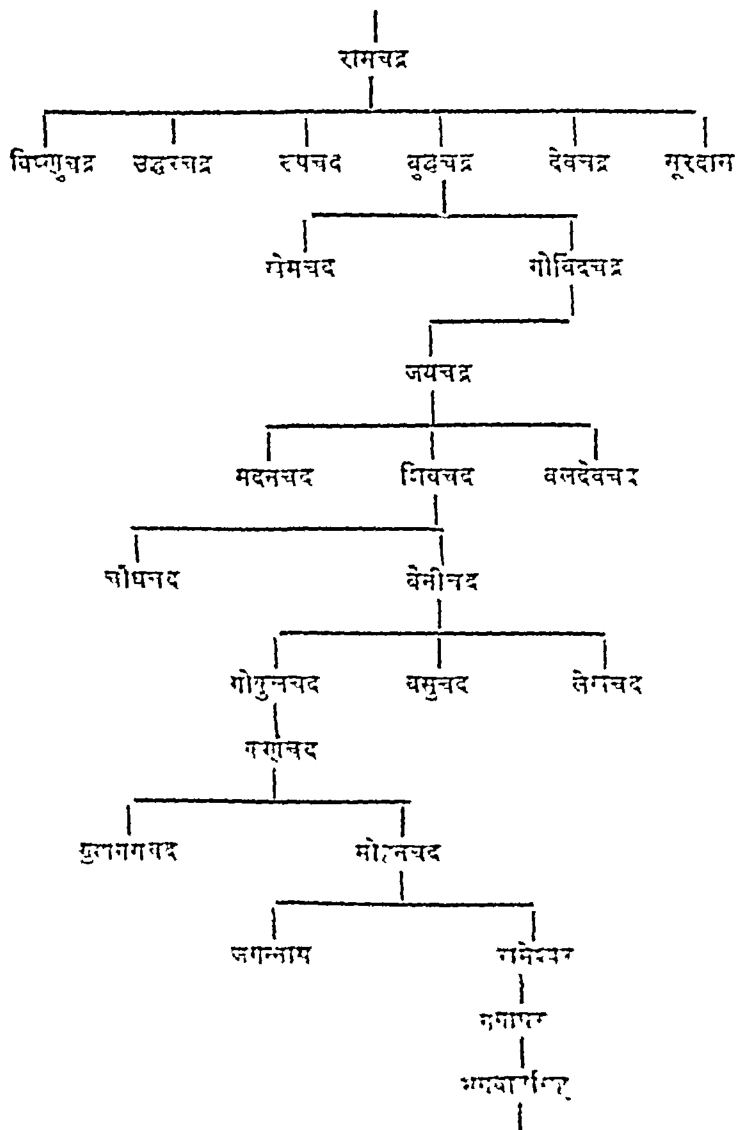
चद्रवरदाई के दोनो पत्नियो से एक कन्या और दस बालक थे। कन्या नाम राजबाई था और बालको में से चौथे पुत्र का नाम जल्हण या जल्ह था। जल्हण भी प्रतिभावान था और रासो के अनुसार जब चद ने गजनी प्रस्थान किया तब पुस्तक पूरी करने का भार जल्हण को सौप दिया। सक कर्ता का इस प्रकार का दोहा रासो में पाया भी जाता है यथा—

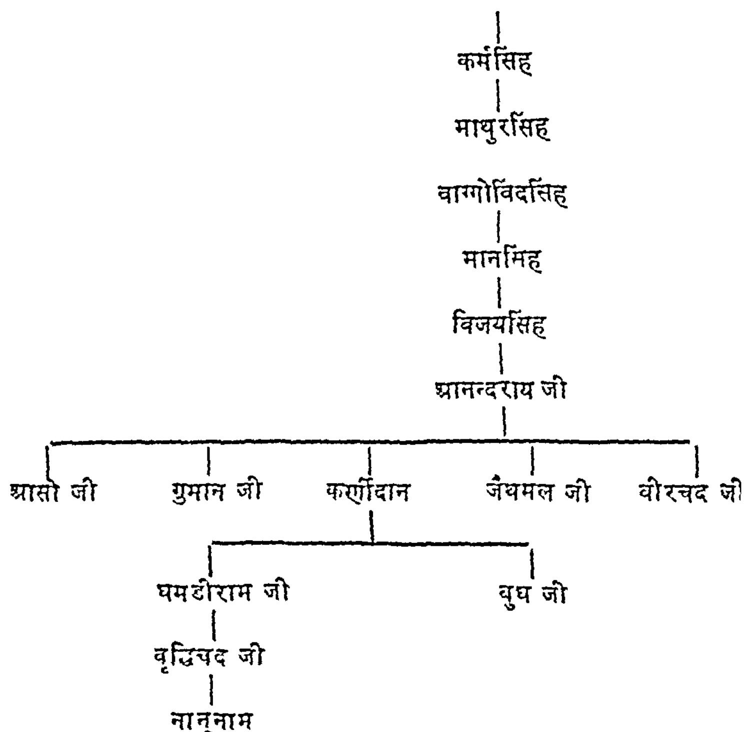
आदि अन्त लगि वृत्तमन त्रन्नि गुनी गुनराज।
पुस्तक जल्हण हत्थ दै चले गज्जन नृप-काज॥

इसके पश्चात् चद्रवरदाई 'रासो' के अनुसार गजनी में जाकर, पृथ्वीर के हाथ से गोरी को मरवा कर, एक दूसरे को मार कर मरे। किंतु ऐतिहासि तथ्यानुसार पृथ्वीराज का देहात गजनी में न होकर, तराइन के युद्ध मे वि स० १२४९ में हुआ।

चद जाति के भट्ट थे। उनके वर्तमान वशज अब तक नागौर में र हैं। महामहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री को अपनी ऐतिहासिक स यात्राओं के समय इसी वश के वर्तमान प्रतिनिधि नानूराम भाट से भेंट हु उनसे उन्हे चद का वश-वृक्ष प्राप्त हुआ जो इस प्रकार है—




रामचद्र
विष्णुचद्र
रूपचद
बुद्धचद्र
देवचद्र
सूरदास
गोविदचद्र
जयचद्र
मदनचद
बलदेवचद
सोमचद
मोहनचद
जगन्नाथ



नानूराम का कहना है कि चन्द के चार लड़के थे जिनमे से एक मुसलमान हो गया। दूसरे का कुछ पता नहीं, तीसरे के वंशज अभोर मे जा बसे और चौथे जल्ह का वंश नागौर में चला। पृथ्वीराज रासो में चंद के लड़कों का उल्लेख इस प्रकार है —

दहति पुत्र कविचंद के सुन्दर रूप सुजान ।
इक्क जल्ह गुन बावरो गुन समुन्द ससभान ॥

पृथ्वीराज रासो में कवि चंद के दस पुत्रों के नाम लिए गए हैं। सूरदास की साहित्य लहरी की टीका मे एक पद ऐसा आया है जिसमें सूर की वंशावली दी है। वह पद यह है—

प्रथम ही प्रभु यज्ञ ते भे प्रकट अद्भुत रूप,
ब्रह्मराम विचारि ब्रह्मा राखु नाम अनूप।
पान पय देवी दियो सिव आदि सुर सुख पाय,
कह्यो दुर्गा पुत्र तेरो भयो अति अधिकाय।
पारि पावन मुख के सुरसहित अस्तुति कीन,
तासों वस प्रसन्न में भो चंद चारु नवीन।
भूप पृथ्वीराज दीन्हें तिन्है ज्वाला देस,
तनय ताके चार कीनो प्रथम आप नरेस।
दूसरे गुनचंद ता सुत सीलचंद सरूप,
बीरचंद प्रताप पूरन भयो अद्भुत रूप।
रंथभौर हमीर भूपति संग खेलत जाय,
तासु बंस अनूप भो हरिचंद अति बिरूयाय।
आगरे रहि गोपचल में रह्यो ता सुत बीर,
पुत्र जनमे सात ताके महाभट गंभीर।
कृष्णचंद, उदारचंद जु रूपचंद सुभाइ,
बुद्धिचंद प्रकास चौथे चंद भे सुखदाइ।
देवचंद प्रबोध संसृत चंद ताको नाम,
भयो सप्तो नाम सूरजचंद मंद निकाम।।

इन दोनों वंशावलियों के मिलाने पर मुख्य भेद यह प्रकट होता है कि नानूराम ने जिनको कल्याणचंद की परम्परा में बताया है, इस पद में उन्हें गुणचंद की परम्परा में रखा गया है। नानूराम का कहना है कि रासो की असली प्रति उनके पास है किन्तु उन्होंने महोबा समय की जो प्रतिलिपि महामहोपाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री को दी थी, वह भी नितान्त अशुद्ध है।

समकालीन परिस्थितियाँ—प्रत्येक कवि अपने युग की धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। चन्दबरदाई के काव्य का अनुशीलन करने से तो यह बात और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है इस युग की

राजनीतिक और समाजिक अवस्था अतस में चित्रपट की भाँति साकार रूप धारण कर लेती हैं। सक्षेप में उनका वर्णन इस प्रकार से किया जा सकता है—

राजनीतिक अवस्था—इस युग की राजनीतिक परिस्थितियाँ बहुत ही विषम थी। सातवी शताब्दी के उत्तरार्ध से हिंदू राज्य की केंद्रीयभूत सत्ता का विनाश होना आरभ हो गया था। विभाजक शक्तियो का इतना अधिक प्रावल्य हुआ कि साधारण घटनाओं ने ही राज्यो के उत्थान और पतन का वीज वोना प्रारभ किया। मुसलमानो ने इससे पूरा लाभ उठाया और उत्तर भारत का अधिकाश भाग मुसलमानो के हाथ आ गया। यह काल भारत की प्राचीनता की वृद्धावस्था है जवकि उसके पास शक्ति का अभाव और विवशता का अवलम्ब है। इस काल का इतिहास अनेक छोटे छोटे राज्यो के उत्थान और पतन की कहानी मात्र है।

सामाजिक अवस्था—सामाजिक दृष्टि से भी उस युग में पारस्परिक सघर्ष का ही अधिक वोलवाला था। उस समय, विवाह, मेले और उत्सव आदि समस्त सामाजिक कार्य अतत युद्ध अथवा सघर्ष मे परिणत हो जाते थे। इस प्रकार से समाज में अव्यवस्था और अराजकता का वोल वाला था, ब्राह्मण पूज्य अवश्य समझे जाते थे किंतु उनकी श्रेष्ठता पहले की अपेक्षा कम हो चली थी। समाज मे क्षत्रियो का प्राधान्य हो गया था। राजपूत वीर, शक्तिशाली और उदार थे किंतु छोटी छोटी वातो में पड कर, वैयक्तिक स्पर्धा के वशीभूत हो कर, राष्ट्र का व्यापक हित भूलकर परस्पर लडा करते थे। यह ठीक है कि उस समय भी वीसलदेव, राणा सागा आदि कुछ क्षत्रिय राजाओं मे राष्ट्रीय भावना विद्यमान थी किंतु अधिकाश क्षत्रियो में राष्ट्रीय भावना का अभाव था। समाज-जाति-पाति, गोत्र आदि के झगडे में पड कर एक्य भावना भूल चुका था। उसी समय वाल-विवाह की प्रथा का श्रीगणेश भी हो गया था किंतु विधवा विवाह का प्रचलन नहीं हुआ था।

प्रश्न २—रासो शब्द की व्युत्पत्ति के बारे मे विभिन्न विद्वानो के मतों का परीक्षण कीजिए तथा रासो काव्य-परम्परा मे संदेशरासक, खुमान रासो और बीसलदेव रासो का विस्तृत परिचय देते हुए पृथ्वीराज रासो का स्थान निर्धारित कीजिए।

आधुनिक युग मे किसी भी कृति का मूल्यांकन करते समय प्रायः उसके व्युत्पत्ति मूलक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक अध्ययन की ओर ही अधिक ध्यान दिया जाता है, फलतः रासो का मूल्यांकन करते समय हम इन्ही विविध दृष्टियों से विचार करेंगे।

रासो ग्रंथो के व्युत्पत्ति-मूलक अध्ययन से हमारा तात्पर्य रासो शब्द की उत्पत्ति से है। साहित्य जगत में रासो शब्द के अब तक छः रूप मिले हैं रास, रासा, रासो, रासौ, रायसो और रायसा। इनके व्युत्पादन में समय-समय पर संस्कृत के छः शब्द यथा रहस्य, रसायण, राजादेश, राजयश, रास और रासक प्रस्तुत किए गए हैं। इनमें से रहस्य शब्द से ही रासो का उद्भूत होना हिन्दी शब्द सागर मानता है। पर ज्ञातव्य यह है कि रहस्य का प्राकृत रूप रहस्स तो मिलता है पर रासा या रास नहीं, परिणामतः आज रासो शब्द का सम्बन्ध रहस्य शब्द से नहीं जोड़ा जाता।

आचार्य शुक्ल अपने इतिहास में रासो की उत्पत्ति रसायण से मानते हैं। वस्तुतः रसायण से रासो का हो जाना सम्भव नहीं है। लेकिन रसायण शब्द से रासो तक पहुँचने-पहुँचते जिन विभिन्न रूपों से यह शब्द गुजरा होगा उनमें से किसी भी रूप का परिचय शुक्ल जी ने नहीं कराया है, और इस परिचय के अभाव में [illegible] शब्द केवल [illegible] शब्द का ही द्योतक है, [illegible], [illegible] आदि की भांति। राजादेश और [illegible] शब्दों की कल्पना इसीलिए की गई कि [illegible] का सम्बन्ध [illegible]। आदेश का आएसु होता है। [illegible] का [illegible] रूप प्रचलित है। तुलसीदास ने [illegible] [illegible] प्रयोग बहुत से स्थलों पर किया है परन्तु [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] का प्रयोग नहीं मिलता। राजादेश और [illegible] का पर्याय [illegible] है। इस प्रकार

से केवल राजा होने से ही राजादेश का अर्थ राज-काव्य कैसे हो जाएगा, यह कुछ समझ में नही आता। राजयश की कल्पना भी ठीक इसी प्रकार से निभ्रांत नही है।

पृथ्वीराज रासो के हस्तलेख मे ही अनेकों पुष्पिकाओं में पृथ्वीराज रासक शब्द आया है। रासो का मूल सस्कृत रूप यही रासक शब्द है। प्रमाणरूपेण हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार से सस्कृत के 'घोरक' शब्द से ब्रज का घोरो, खडी बोली का घोडा, और अवधी का घोर निकला वैसे ही रासक से ब्रज का रासो और खडी बोली का रासा और अवधी का रास बना। रासक का प्राकृत रासय ब्रज के अनुरूप रायसो तथा खडी बोली के अनुरूप रायसा शब्द बना। रासक शब्द का अर्थ काव्य है, इसलिए पृथ्वीराज रासो का अर्थ पृथ्वीराज काव्य है।

डा० दशरथ शर्मा के मतानुसार "रासो मूलत. गानयुक्त नृत्य विशेष से क्रमश· विकसित होते-होते उपरूपक और फिर उपरूपक से वीर रस के पद्यात्मक प्रबन्धों मे परिणत हो गया।"

काव्य परम्परा की दृष्टि से यदि विचार किया जाए तो इस प्रकार की प्रथम प्रामाणिक कृति अपभ्रंश-युगीन सदेश रासक है। इसका प्रणयन मुल्तान के मुस्लिम कवि अब्दुररहमान ने ग्यारहवी शताब्दी मे किया था। इसकी कहानी बहुत सरल और मर्मस्पर्शी है। मुल्तान को जाते हुए किसी पथिक का एक ऐसी विरहिणी स्त्री से साक्षात्कार होता है जिसका पति कार्यवश मुल्तान गया था। वह विरहिणी प्रथम वर्ष की विभिन्न ऋतुओं में अपने ऊपर बीते हुए दुख की कथा सुनाती है और फिर प्रिय के लिए कुछ सदेश भेजती है। उस सदेश मे ऐसी करुण वेदना है जो पाठक का ध्यान बरबस अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। इसकी उपमाएँ यद्यपि परम्परागत हैं तथापि बाह्य-तत्त्व की वैसी व्यजना उसमें नही है जैसी आंतरिक अनुभूति की। ऋतु वर्णन के प्रसग में बाह्य प्रकृति इस रूप में चित्रित नही हुई जिससे आतरिक अनुभूति की व्यजना दब जाए।

यद्यपि इस ग्रंथ का विषय पृथ्वीराज रासो आदि से भिन्न जा पड़ता है किन्तु फिर भी बीसलदेव रासो और इनमें पर्याप्त समानता है। इसके समान ही बीसलदेव रासो में गेय छंद का प्रयोग किया गया है तथा प्रेम भाव का प्राधान्य है।

संदेश रासक के अतिरिक्त इस परम्परा में जिन ग्रंथों का विशेषरूपेण उल्लेख किया जा सकता है उनमें खुमान रासो, बीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, हम्मीर रासो, विजयपाल रासो और परमाल रासो ही उल्लेखनीय हैं।

खुमान रासो का प्रणयन दलपति विजय ने किया है। ये जाति के भाट और मेवाड़ के राजा खुमान द्वितीय के समकालीन थे। अगरचन्द नाहटा ने इन्हें भाट न मानकर तपागच्छ का कोई जैन साधु माना है। मोतीलाल मेनारिया भी ऐसा ही मानते हैं। उनका कथन है, "ये तपागच्छीय जैन साधु शांति विजय के शिष्य थे। इनका असली नाम दलपत था पर दीक्षा के बाद बदल कर दौलत विजय रख दिया था।"

इनका रचनाकाल सं० १७३० से लेकर सं० १७६० तक के मध्य है। इस समय इनकी मुख्य कृति खुमान रासो की जो प्रति प्राप्त होती है वह अपूर्ण है। इसमें महाराणा प्रताप तक का ही वर्णन मिलता है। पर जिस रूप में यह प्रति प्राप्त है उसके द्वारा भी इसका रचनाकाल १७ वीं शताब्दी ही ठहरता है।

काव्य कौशल की दृष्टि से इस कृति के सम्बन्ध में कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता। इसका कारण यह है कि यह प्रति समय-समय पर कवियों के हाथों से नई सामग्री प्राप्त करती रही और अपने पूर्वरूप से केवल एक [illegible] रचना ही रह सकी है।

इस परम्परा की द्वितीय प्रमुख रचना बीसलदेव रासो है। इसके रचयिता नरपति नाल्ह ने अपना कुछ भी परिचय नहीं दिया। अनेक विद्वानों के मतानुसार [illegible] भाट, अथवा ब्राह्मण [illegible] हैं। किन्तु कुछ भी हो इनका रचा ग्रंथ 'बीसलदेव रासो' हिन्दी में बहुत पहले से महत्वपूर्ण माना जाता है। पूर्ण,

अपूर्ण सब मिला कर इस ग्रंथ की १४, १५ प्रतियाँ प्राप्त हुई है जिनके अनुसार रचनाकाल भी भिन्न-भिन्न हैं। किन्तु इसकी दो प्रतियाँ मुख्य हैं एक जयपुर की, दूसरी बीकानेर की। पहली प्रति के अनुसार नरपति नाल्ह विग्रहराज बीसलदेव चतुर्थ के तथा द्वितीय के अनुसार विग्रहराज द्वितीय के समकालीन पड़ते हैं। किन्तु राजस्थान के इतिहास विशेषज्ञ गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार इसका निर्माणकाल १३५८ के लगभग है। कुछ भी हो, बीसलदेव रासो में, चार खण्डो में साभर के राजा बीसलदेव और मालवा की राजकुमारी राजमती की कथा का वर्णन है। २१५ छन्दो मे वर्णित कथा का संक्षेप इस प्रकार है—

"मालव का राजा भोज अपनी पुत्री राजमती का विवाह बीसलदेव से करता है। बड़ी धूमधाम, से बिना कुछ रक्तपात हुए विवाह संपन्न होता है। एक दिन राजा रानी से बड़ाई करता है कि मेरे समान कोई नहीं। रानी कहती है, घमंड न करो बहुत से राजा तुमसे बड़े हैं और उदाहरणस्वरूप रत्नों के भण्डार वाले उड़ीसा के राजा की बात कहती है। राजा उड़ीसा-यात्रा के लिए सन्नद्ध हो जाता है। रानी उदास होती है और उसे रोकती है किंतु वह जगन्नाथ की पूजा करने का बहाना करता है। राजा की उड़ीसा-यात्रा पर राजा के वियोग में रानी बहुत दुःखी होती है और अपने पिता के यहाँ चली जाती है। वहाँ भी वह राजा की नित्य बाट देखती है। इन वियोग स्थलों का वर्णन कवि ने बड़ी सहृदयता से किया है। दस वर्ष बीतने पर वह पण्डित के हाथ एक पत्र भेजती है, जिसे पढ़ कर राजा रानी के पास लौटने का विचार कर लेता है। वहाँ की सुन्दरियाँ रोकती हैं, किन्तु वह नहीं मानता। उड़ीसा नरेश उसे बड़े आदर के साथ धन-रत्न आदि देकर विदा करता है। वहाँ से राजा के लौटने पर मालवा मे बड़ा उत्सव मनाया जाता है जिसमें भोज भी सम्मिलित होता है। इसके पश्चात् बीसलदेव राजमती को लेकर बड़ी धूमधाम के साथ अपने राज्य को चला जाता है और आनन्द से राज्य करता है।"

ऐतिहासिक दृष्टि से इसके कथानक में भी विद्वानों को संदेह है और साहित्यिक दृष्टि से भी यह पुस्तक विशेष महत्त्व की नहीं। इसकी भाषा

अपरिमार्जित और असाहित्यिक है, वर्णन भी काव्यात्मक नहीं हैं। हाँ, राजमती का वियोग-वर्णन अच्छा है परन्तु ऐसे स्थल कम हैं। छंदों में भी गति और यति दोष भरे पड़े हैं। इससे पता चलता है कि नरपति नाल्ह विशेष प्रतिभा का कवि न था।

रचना परम्परा की दृष्टि से तीसरी महत्वपूर्ण कृति चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो ही है। यद्यपि इसकी रचना की ऐतिहासिकता और भाषा की दृष्टि से यह ग्रंथ पर्याप्त विवादास्पद हो गया है किन्तु यदि इन दोनों तथ्यों को छोड़कर शुद्ध काव्यत्व की दृष्टि से इस ग्रन्थ का मूल्यांकन किया जाए तो इस ग्रन्थ का महत्व इस परम्परा के ग्रंथों में सर्वाधिक दीख पड़ता है। भावों के मूर्तीकरण में, अनुभावों की योजना में, ऋतु-वर्णन की दृष्टि से और रस-परिपाक के क्षेत्र में जितनी सफलता इस ग्रंथ को मिली है उतनी सम्भवतः किसी अन्य ग्रंथ को नहीं। कवि मानव-मात्र के अन्तस्तल में घुस कर भाव वीचियों को खोज लाने में पूर्णतः सफल हुआ है। इतना ही नहीं कला पक्ष की दृष्टि से भी उसे अत्यधिक सफलता की प्राप्ति हुई है। भाषा पर उनका अचूक अधिकार भी है, छंद के क्षेत्र में सम्राट की पदवी से विभूषित है तो अलंकारों के क्षेत्र में सहज और स्वाभाविक प्रयोग उनकी रचना में देखने को मिलता है।

पृथ्वीराज रासो के उपरान्त तीन कृतियों का और उल्लेख किया जा सकता है, हम्मीर रासो, विजयपाल रासो और परमाल रासो का। इनमें से हम्मीर रासो शार्ङ्गधर की कृति है, परमाल रासो का लेखक अज्ञात है और विजयपाल रासो की रचना नल्लसिंह के द्वारा की गई है

वर्ण और अर्थमूर्तियो द्वारा सृजन कर यति-गति वाले वाञ्छित छन्दो से अपने पात्रो के आंतरिक उद्वेलन को सशक्त रूप से मूर्त करते हुए कवि ने इतिहास और कल्पना के योग से उनके विजय, आह्लाद, अवसाद, क्षोभ, चिंता आशा-निराशा आदि के द्वारा श्रोता या पाठक के चित्त को अभिभूत करने का मंत्र सिद्ध किया है। यही कारण है रासो की साहित्यिक जय दुंदुभि का। उसकी सुदीर्घ और सुनिश्चित् परंपरा अपनी छाप समेत परवर्ती रासो-काव्य में निरन्तर प्रतिबिम्बित देखी जा सकती है।

प्रश्न ३—महाकाव्यत्व की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो का मूल्यांकन कीजिए।

रासो हिन्दी साहित्य का आदि महाकाव्य है और इसका रचयिता है हिन्दी का आदि महाकवि। परन्तु इस विषय पर विवेचन करने और पृथ्वीराज रासो को महाकाव्य मानने से पूर्व साहित्य-मनीषियो द्वारा निर्दिष्ट इसके (महाकाव्य के) स्वरूप एवं अनिवार्य तत्वों पर विचार करना अधिक आवश्यक प्रतीत होता है। अस्तु हम सर्वप्रथम उन्ही तत्वों का विवेचन-विश्लेषण करेंगे।

महाकाव्य जीवन की सर्वांगीणता का दर्शन कराता है। वह अपनी विशद और विस्तृत परिधि में समस्त राष्ट्र और जाति की संस्कृति को आत्मसात किए रहता है और महाकाव्य की इसी महत्ता को देखकर काव्य शास्त्र के आदि-काल से इसके तत्वो का विवेचन एवं विश्लेषण होता रहा है जिसे एक वाक्य में इस प्रकार कहा जा सकता है—'महाकाव्य एक बृहदाकार समाख्यान काव्य है जिसमे उच्चतर चरित्रों का वर्णन रहता है और जिसके प्रवाह में घनत्व एवं गरिमा होती है।'

यदि इस वाक्य का विश्लेषण किया जाए तो महाकाव्य के लिए आवश्यक तत्व भी स्वयमेव स्पष्ट हो जाते हैं जो इस प्रकार हैं—१ कथावस्तु, २ चरित्र-चित्रण, ३ काव्य-पदावली, और ४ उद्देश्य।

अब हम इन्ही तत्वों के आधार पर रासो का मूल्यांकन करेंगे।

कथावस्तु—कथावस्तु काव्य का मेरुदण्ड है। इसी तथ्य को दृष्टिपथ में रखते हुए विभिन्न विद्वानों ने इसके लिए निम्न गुणों का होना आवश्यक माना है—

१ महाकाव्य की कथा इतिहास से उद्भूत होनी चाहिए।

२ उसका प्रारम्भ आशीर्वाद, नमस्कार या वर्ण्य वस्तु के निर्देश से होना चाहिए।

३ उसमें यथा स्थान नूतन, मनोमुग्धकारी और काल्पनिक वृत्तों का संयोजन होना चाहिए।

४. इसका विभाजन सुविधानुसार सर्गों में होना चाहिए और यह सर्ग-संख्या ८ से अधिक होनी चाहिए।

५ यह नाना प्रकार के वर्णनों से अलंकृत, नवरसों से अभिषिक्त, विपुलाकार और सर्वत्र भिन्न वृत्तान्तों से युक्त लोकरंजनकारी होना चाहिए।

६. उसके कथानक में सभी नाट्य संधियों का गुम्फन होना चाहिए।

और यदि हम इन सभी दृष्टियों से रासो की समीक्षा करें तो कहने की आवश्यकता नहीं कि इसमें कथावस्तु सम्बन्धी ये सभी विशेषताएं सन्निहित हैं। इसकी कथा का आधार बारहवीं शताब्दी के दिल्ली और अजमेर के शासक ऐतिहासिक वीर महाराज पृथ्वीराज चौहान हैं। इतना ही नहीं इसकी कथा का नायक भारी शूरवीरता, दया और दानवीरता में किसी से कम नहीं है।

वहाँ की रमणियों के गर्भपात हो गए, वीर वैतालगणों के मन प्रफुल्लित हुए और देवी रणचण्डी हुँकारने लगी।

केवल उसके इस तेज का वर्णन ही कवि ने नहीं किया है अपितु उसके अन्य गुणों का वर्णन भी कवि ने विस्तार से किया है। गुर्जरेश्वर, कान्यकुब्जेश्वर और गजनाधिपति को कवि ने प्रतिनायक के रूप में प्रस्तुत किया है।

काव्य पदावली—काव्य पदावली की दृष्टि से महाकाव्य का पूर्ण उत्कर्ष यह है कि वह प्रसन्न हो, क्षुद्र न हो अर्थात् गरिमा और प्रसाद गुण से युक्त हो। कहने का तात्पर्य यह है कि महाकाव्य की भाषा अलंकारों और मुहाविरों से युक्त गम्भीर से गम्भीर तथा सरल से सरल भावों को वहन करने में समर्थ होनी चाहिए। इतना ही नहीं उसमें छन्दों का भी अपूर्व विधान होना चाहिए, यद्यपि प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द के प्रयुक्त होने तथा सर्गांत में छन्द परिवर्तन हो जाने के कारण छन्द-वैविध्य को महाकाव्य में कोई विशेष स्थान प्राप्त नहीं है।

इस दृष्टि से रासो की समीक्षा करने पर ज्ञात होता है कि रासोकार का भाषा पर अचूक प्रभाव है। वह जैसे चाहता है शब्दों का प्रवाह मोड़ देता है, हर शब्द जैसे उसके इशारे पर नाचता चलता है और भावावेग में धाराप्रवाह शब्दों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे इस कवि के पास शब्द भण्डार की कमी ही नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर वह अरबी, फारसी के शब्दों का भी अपनी रचना में समाहार कर लेता है, परन्तु बिहारी आदि के समान बहुत खराद-तराश या सोच-विचार के साथ नहीं। यही कारण है कि डा० नामवर सिंह के शब्दों में हम यह सकते हैं कि "भावानुकूल भाषा के मन्द और तीव्र सौंदर्य को जिन्हें चाह है वे चन्द के पास बार-बार मडराएँगे।"

छंद भाषा की जाति तथा भंगिमा है इसलिए चंद जैसा भाषा पर अचूक अधिकार रखने वाले कवि की छंद-भंगी स्वाभाविक है। वस्तुतः हिन्दी में चंद को छंदों का राजा कहा जा सकता है। भाव भंगिमा के साथ-साथ दनादन भाषा नए छंदों की गति धारण करती चलती है और विशेषता यह कि इस चाल रासो

हुई नदी में बहते हुए चित्त को कोई मोड़ नहीं खटकता। इसीलिए तो सरोज के रचयिता शिवसिंह सेंगर ने चंद को छप्पयों का राजा कहा है।

भाषा सौन्दर्य की वृद्धि के क्षेत्र में अलंकारों का प्रयोग भी पर्याप्त सीमा तक सहायक होता है। चंद ने भी इस साधन से अपने काव्य में सौन्दर्य की अभिवृद्धि की है। किन्तु उनके अलंकार विधान पर दृष्टि निक्षेप करते समय स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनके अलंकार यत्नसाध्य नहीं हैं, वे तो ऐसे स्वाभाविक अलंकार हैं जिन्होंने भाषा की अभिव्यंजना शक्ति बढ़ा दी है। उनमें ऐसे अलंकारों का संगुम्फन भी नहीं हुआ है जिनका लक्ष्य केवल चमत्कार उत्पन्न करना होता है। उनमें तो उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, उदाहरण आदि ऐसे स्वाभाविक अलंकारों का प्रयोग है जो अनायास ही कवि की लेखनी से निःसृत हो गए हैं।

उद्देश्य—साहित्य में सबसे ऊँचा स्थान काव्य का है और काव्य के भीतर भी सर्वोच्च पद महाकाव्य को दिया गया है। यही कारण है कि प्रत्येक महत्त्वाकांक्षी कवि महाकाव्य लिखने की अभिलाषा करता है, किन्तु महाकाव्य नाम से लिखे गए अथवा बाह्य दृष्टि से महाकाव्य प्रतीत होने वाले सभी काव्य युगों की प्रवाहमान धारा में अपना स्थान तब तक नहीं बना पाते जब तक उनमें कोई महान् उद्देश्य सन्निहित नहीं होता है। यही कारण है कि रासो के महाकाव्यत्व के प्रश्न पर विचार करते समय उसमें निहित उद्देश्य को देखना भी आज आवश्यक प्रतीत होने लगा है।

विवरण उपस्थित करना भी नही है। वस्तुत उसका उद्देश्य इन सबसे बहुत ऊँचा और महान् है। वह उद्देश्य है जातीय-जीवन में प्राण सचार करना, उसमें स्वातन्त्र्य और बलिदान का मत्र फूंकना और बाहु-बल पर आधारित जीवन मूल्यो की स्थापना करना। रासो का नायक यद्यपि अन्तिम युद्ध मे विजयी नही होता है और पृथ्वीराज, चन्द तथा गोरी की मृत्यु के बाद ६९ वें समय मे दिल्ली, अजमेर और कान्यकुब्ज पर अर्थात् प्राय समूचे भारत पर विदेशी और विधर्मी आक्रमणकारियों का अधिकार हो जाता है किन्तु इससे महाकाव्य के उद्देश्य पर आँच नहीं आती और न उससे निराशा और जीवन के प्रति अनास्था की भावना का ही उदय होता है। इससे स्पष्ट है कि पृथ्वीराज और शाहबुद्दीन गोरी के युद्ध को निमित्त बना कर पृथ्वीराज रासो में भारतीय स्वातन्त्र्य का ही सिंहनाद किया गया है। वस्तुत स्वतन्त्रता की बलि-वेदी पर हँसते-हँसते बलि हो जाने और देश, जाति तथा अपने व्यक्तित्व के गौरव और प्रतिष्ठा के लिए प्रतिक्षण मरने और मिटने के लिए तैयार रहने का अमर-संदेश देना ही इस महाकाव्य का महत् उद्देश्य है।

इस प्रकार से महाकाव्य की कसौटी पर रासो का अनुशीलन एव परिशीलन करने के उपरात हम निर्विवाद रूप से यह कह सकते हैं कि रासो एक सफल महाकाव्य है। अस्तु।

प्रश्न ४—रासो की प्रामाणिकता पर विचार कीजिए।

रासो हिन्दी साहित्य का वृहदाकार आदि महाकाव्य है। परन्तु अभी तक इस वृहद काव्य-ग्रथ की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता की गुत्थी सुलझने नही पाई है।

वस्तुत इसकी प्रामाणिकता का प्रश्न तब उद्भूत हुआ जब बगाल की रायल एशियाटिक सोसायटी ने इसका प्रकाशन आरम्भ किया और तब से लेकर अब तक अनेकानेक मत प्रकट किए जा चुके हैं। इन समस्त मतों को दो पक्षों में विभाजित किया जा सकता है—

१. अप्रामाणिक मानने वाला पक्ष।

२. प्रामाणिक माननेवाला पक्ष।

अप्रामाणिक मानने वाले विद्वानों में डा० बूलर, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वान प्रमुख हैं। इन विद्वानों ने रासो को जिन आधारों पर अप्रामाणिक माना है उनको तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१ घटना सम्बन्धी।

२ काल सम्बन्धी।

३ भाषा सम्बन्धी।

घटना सम्बन्धी—ओझा जी आदि विद्वानों का कथन है कि इसमें अनेकों ऐतिहासिक भ्रांतियाँ हैं उदाहरण के लिए रासो में दिए गए अधिकांश नाम और घटनाएँ इतिहास-सम्मत प्रामाणित नहीं होतीं। रासो में परमार, चालुक्य, और चौहान क्षत्रिय अग्निवंशीय माने गए हैं परन्तु प्राचीन ग्रन्थों एवं शिलालेखों के आधार पर वे सूर्यवंशी प्रामाणित होते हैं। साथ ही चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता का नाम, माता का वंश, पुत्र का नाम और सामंतों के नाम आदि भी ऐतिहासिक शिलालेखों और पृथ्वीराज विजय से भिन्न और अशुद्ध हैं। पृथ्वीराज की माता अनंगपाल की दुहिता नहीं थी और न जयचन्द ही अनंगपाल का दौहित्र तथा राठौर वंशीय था। शिलालेखों में जयचन्द को गहरवार क्षत्रिय बताया गया है। इस प्रकरण में ओझा जी जयचन्द और पृथ्वीराज की शत्रुता एवं संयोगिता स्वयंवर को भी कल्पित मानते हैं। इतिहास के अनुसार न तो पृथ्वीराज की माता का नाम कमला था और न अनंगपाल उस समय दिल्ली का राजा था। पृथ्वीराज की बहिन पृथा का विवाह भी मेवाड़ के राणा समरसिंह के साथ नहीं हुआ था क्योंकि शिलालेखों से यह प्रमाण मिल चुके हैं कि समरसिंह तो पृथ्वीराज के [illegible] वर्ष बाद तक जीवित रहे। [illegible] राणा भीमसिंह का पृथ्वीराज [illegible] भी [illegible] क्योंकि राणा भीम [illegible] पृथ्वीराज के [illegible] मारा जा चुका था। इसी प्रकार पृथ्वीराज का विवाह

आदि का वर्णन भी इतिहास विरुद्ध ठहरता है। शाहबुद्दीन द्वारा समरसिंह का वध और पृथ्वीराज द्वारा सोमेश्वर का वध भी अनैतिहासिक है। इसके अतिरिक्त पृथ्वीराज के जीवन की घटनाएँ, पृथ्वीराज का दिल्ली गोद आना, मेवाती-मुगल युद्ध, संयोगिता-स्वयंवर आदि घटनाओं का उल्लेख सं० १४६० के आस-पास रचित हम्मीर महाकाव्य में भी कहीं नहीं मिलता।

काल सम्बन्धी—दूसरा कारण यह है कि रासो में दी गई सभी तिथियाँ अशुद्ध हैं। कर्नल टाड के अनुसार रासो में दिए गए संवतों और ऐतिहासिक साधनों द्वारा प्राप्त संवतों में १०० वर्ष का अन्तर है। रासो में पृथ्वीराज की मृत्यु का संवत ११५८ है जबकि इतिहास में वह सं० १२४८ है। जन्म रासो में सं० १११५ है इतिहास से वह १२०० ठहरता है। इसी प्रकार आबू पर चालुक्य के आक्रमण, शाहबुद्दीन के साथ पुण्डीर युद्ध आदि की तिथियाँ भी अशुद्ध हैं। इसके अतिरिक्त रासो के अनुसार शाहबुद्दीन गोरी १२४६ में पृथ्वीराज द्वारा मारा गया था परन्तु इतिहास के अनुसार १२६३ में गक्खरों द्वारा उसका वध किया गया था।

भाषा सम्बन्धी—ओझा जी की तीसरी आपत्ति यह है कि रासो में प्राय दस प्रतिशत शब्द अरबी फारसी के हैं। साथ ही रासो की भाषा में अनुस्वरांत शब्दों की अधिकता है। इन दोनों कारणों से भी यह ग्रंथ १६ वीं शताब्दी के आस पास का ठहरता है।

परन्तु रासो को प्रामाणिक मानने वाले यथा मिश्रबन्धु, मोहनलाल विष्णु-लाल पाड्या, डा० दशरथ शर्मा, आदि विद्वानों ने इन सभी आक्षेपों का उत्तर दिया है। वे ऐतिहासिक भ्रान्तियों का समाधान करते हुए कहते हैं कि रासो में ये त्रुटियाँ कल्पना के आधिक्य एवं अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन से आगई हैं। इसके अतिरिक्त उनका कथन है कि नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से प्रकाशित पट्टे-परवानों से इन भ्रान्तियों का निराकरण हो जाता है। परन्तु ओझा जी इन पट्टे-परवानों को भी जाली मानते हैं। इस पर डा० दशरथ शर्मा ने बड़ा परिश्रम

किया है। अपने लम्बे और कठोर परिश्रम के उपरान्त वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि रासो का मूलरूप अल्पकाय था अतः वह प्रामाणिक है। उन्होंने रासो को अप्रामाणिक मानने वालों का खण्डन करते हुए कहा है कि रासो न तो जाली ग्रन्थ है और न इसकी रचना ही १६०० वि० के आस-पास हुई थी। इधर मिली हुई रासो की लघुतम प्रतियों के आधार पर घटना वैषम्य, काल वैषम्य एवं भाषा सम्बन्धी सभी शंकाओं का समाधान हो जाता है। इन प्रतियों में इतिहास विषयक त्रुटिपूर्ण घटनाओं का कहीं भी उल्लेख नहीं है उदाहरणार्थ न तो इसमें राजपूत कुलों की आबू के अग्निकुण्ड से उत्पत्ति का उल्लेख है और न ही पृथा का विवाह तथा शाहबुद्दीन समरसिंह युद्ध तथा भीम सोमेश्वर पृथ्वीराज से युद्ध का ही उल्लेख है। इतना ही नहीं पृथ्वीराज और पद्मावती के विवाह की चर्चा भी नहीं है।

काल वैषम्य के सम्बन्ध में मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या का कथन है कि रासो की तथा इतिहास सिद्ध तिथियों में सर्वत्र ९० वर्ष का अन्तर पाया जाता है और यह स्वाभाविक भी है क्योंकि पृथ्वीराज आदि क्षत्रिय राजा नन्दवंशीय शूद्र राजाओं के राजत्वकाल के ९० वर्षों के शासन को अपने संवत् में क्यों गिनते। इस प्रकार से मोहनलाल विष्णुलाल पाण्ड्या ने अनन्द संवत् की कल्पना की है। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि अनन्द संवत् की यह कल्पना ही निराधार है और यदि इसे सत्य मान भी लिया जाए तो भी रासो की बहुत-सी तिथियाँ इतिहास से मेल नहीं खातीं।

भाषा सम्बन्धी प्रश्न का समाधान करते हुए मिश्रबन्धुओं का कथन है कि—पहली बात तो यह है कि भारत पर इस काल से बहुत पहले ही मुसलमानों के आक्रमण शुरू हो गए थे। सिंध और मुल्तान पर इनका अधिकार हो चुका था। अतः साहित्य पर इनके व्यापार का फल स्वाभाविकता से ही अरबी फारसी के शब्द इनके साहित्य में प्रवेश करने लगे थे। दूसरे रासो का बहुत सा भाग प्रक्षिप्त है अतः पिछले काल में मुसलमानी राज्य के साथ भाषा पर अरबी फारसी का प्रभाव होना भी स्वाभाविक है। इसलिए प्रक्षिप्त अंश,

में और भी मुसलमानी शब्द आ जाने से रासो में दस प्रतिशत शब्द अरबी फारसी के हैं। उनका कथन है कि जहाँ तक अब स्वरांत शब्दों की अधिकता का प्रश्न है वह तो डिंगल भाषा की विशेषता है।

परन्तु इस वाद-विवाद के द्वारा ही रासो की प्रामाणिकता का प्रश्न समाप्त नहीं हो जाता। इस पर विचार करते समय देखना तो यह है कि इसका मूल रूप क्या है, इसका रचनाकाल क्या है, इसके मूल अंश का रचयिता क्या चन्द्रवरदाई है और क्या वह चन्द्रवरदाई इतिहास-प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान का समकालीन है? और अब हम इन सभी प्रश्नों पर विचार करेंगे।

रासो का मूल रूप—अब तक रासो के चार रूपांतर प्राप्त हुए हैं। प्रथम में लगभग एक लाख छंद, द्वितीय में दस हजार छंद, तृतीय में चार हजार छंद और चतुर्थ में दो हजार छंद हैं। इन चारों रूपांतरों की प्राप्त प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन से जो प्रसंग सामान्यरूप में मिलते हैं वे इस प्रकार हैं—

१ आदि पर्व।
२ दिल्ली किल्ली कथा।
३. अनंगपाल दिल्ली दान।
४. पंगयज्ञ विध्वंस।
५. संयोगिता नेम आचरण।
६ कैमास वध।
७. षट्ऋतु वर्णन।
८ कनवज कथा।
९. बड़ी लड़ाई।
१०. बान बेध।

इन सभी सामान्य कथा प्रसंगों के वर्णन विस्तार में भी पर्याप्त अन्तर है। उदाहरण के रूप में जहाँ छोटे रूपांतर में पृथ्वीराज दो विवाह करता है वहाँ बृहद तक पहुँचते-पहुँचते वह पूरे तेरह विवाह पर जा पहुँचता है। इसी प्रकार से यदि छोटे रूपांतर में राजा केवल ५ युद्ध करता है तो मध्यम रूपान्तर तक

४३ और वृहद् तक ५७ युद्धों का गौरव प्राप्त करता है। सत्याओं के अतिरिक्त अनेक नये इतिवृत्तों, कथाओं तथा प्रसगों की सृष्टि के द्वारा भी इसकी वृद्धि हुई है।

इन सभी घटनाओं के द्वारा रासो में इतनी वृद्धि हो गई है कि उसके वास्तविक रूप का पता लगाना असम्भव कार्य-सा प्रतीत होने लगता है। यदि ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर रासो के मूल रूप का अनुसन्धान किया जावे तो कैमास वध के अतिरिक्त कोई भी प्रसग ठीक नहीं जान पड़ता। यह प्रसग भी केवल 'पृथ्वीराज विजय' में पृथ्वीराज के मन्त्री कदम्बवास तथा पुरातन काव्य सग्रह में प्राप्त कैमास वध सम्बन्धी छप्पयों से ही समर्थित है।

कुछ विद्वानों ने 'पुरातन काव्य-सग्रह' के पृथ्वीराज सम्बन्धी छप्पयों के आधार पर अनुमान किया है कि मूल पृथ्वीराज रासो अपभ्रंश काव्य था। परन्तु इस मत के विरुद्ध तो यह भी कहा जा सकता है कि पुरातन प्रबन्ध सग्रह में मूल पृथ्वीराज रासो के छन्दों का अपभ्रंश रूपान्तर सुरक्षित है अतः इस मत को मानने में अनेक बाधाएँ हैं।

वस्तुतः यदि पृथ्वीराज रासो का रचयिता चन्द पृथ्वीराज का समकालीन था तो प्राप्त प्रतियों में से कोई भी उसकी कृति नहीं है।

रासो का रचना काल—ग्रंथ में इस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं किया गया है। प्राप्त स्रोतों के आधार पर इसका प्रथम उल्लेख स० १७०७ में दलपति मिश्र रचित 'जसवन्त उद्योत' में मिलता है। स० १६२५ में चौहानवंशी बूँदी नरेश सुर्जन तथा उनके पुत्र भोज के आश्रय में कवि चन्द्रशेखर द्वारा रचे गए 'सुर्जन चरित' नामक काव्य में जहाँ पृथ्वीराज का वर्णन पूरे एक सर्ग में किया गया है वहाँ पृथ्वीराज के साथ चन्द का भी उल्लेख कर दिया गया है। परन्तु उसे रासोकार नहीं कहा गया है। इससे स्पष्ट है कि स० १६२५ तक स्वयं चौहानों के दरबारों को भी पृथ्वीराज रासो का पता न था। श्री मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने स्व लिखित 'अनन्द-[illegible]' के अनुसार पृथ्वीराज रासो को स० १६०७ तक प्राप्त होना, सिद्ध करना चाहा

है। परन्तु खोज रिपोर्ट के द्वारा ज्ञात होता है कि यह फुलस्केप कागज पर लिखी हुई बहुत ही आधुनिक रचना है। इस प्रकार अकबर के शासनकाल से पूर्व पृथ्वीराज नामक किसी कवि का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। और जैसा कि नरोत्तम स्वामी का अनुमान है कि अकबर की आधीनता स्वीकार करते समय मेवाड़ के राजकुल ने अपना गौरव बढ़ाने के हेतु पृथ्वीराज चौहान से अपना सम्बन्ध स्थापन किया और इसके लिए पृथ्वीराज की पृथा नामक भगिनी की कल्पना की। अन्त में उन्होंने इन सबको काव्यमय रूप देकर, परंपरागत पृथ्वीराज रासो मे मिलवा दिया और फिर तो अमरसिंह द्वितीय (स० १७५५-६७ वि०) के राज्यकाल तथा इसमें परिवर्तन और परिवर्द्धन होता रहा।

रासो का रचयिता चंद—सुदृढ़ जन-श्रुति के होने पर भी ऐसा कोई ठोस एवं प्राचीन प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर पृथ्वीराज रासो के रचयिता के रूप में चन्द व्यक्ति का नामोल्लेख हो। पुरातन प्रबन्ध संग्रह के पृथ्वीराज प्रबन्ध मे अवश्य ही चन्द बलद्दिय कृत पृथ्वीराज सम्बन्धी दो छन्दों का पता चलता है किन्तु उनके आधार पर यह कहना कठिन है कि ये किसी प्रबन्ध-काव्य के अंग हैं। परन्तु फिर भी इनसे इतना तो निश्चित है कि चन्द बलद्दिय नामक एक कवि अवश्य था जिसने पृथ्वीराज के सम्बन्ध मे काव्य रचना की थी।

चन्द और पृथ्वीराज—पृथ्वीराज रासो के वृहद् और मध्यम रूपान्तरों के अनुसार चन्द पृथ्वीराज के जन्म-मरण का अनन्य साथी था। परन्तु इतिहास के द्वारा इस घटना की पुष्टि नहीं होती परन्तु पृथ्वीराज के दरबारी कवि के रूप में चन्द बलद्दिय का होना असम्भव नहीं है और उसकी पृथ्वीराज विषयक काव्य-रचना के उदाहरण प्राप्त हैं। परन्तु पृथ्वीराज रासो नाम से प्राप्त परवर्ती रूपान्तरों में कितना अंश चन्द कृत है अथवा चन्द से उसका क्या सम्बन्ध है इसका निर्णय करना इस समय असम्भव है। सम्भावना यही है कि चन्द की पृथ्वीराज विषयक कविताएँ उसके वंशजों तथा भाट-चारणों की मौखिक परम्परा द्वारा रक्षित होती गईं।

अन्त में जहाँ तक ऐतिहासिक सामग्री के आधार पर रासो की प्रामाणिकता परखने का प्रश्न है उसके सम्बन्ध में डा० नामवरसिंह के शब्दों में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि केवल अनैतिहासिक घटनाओं के समावेश से ही पृथ्वीराज रासो चन्द की कृति होने के गौरव से वंचित नहीं हो सकता। पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता पर विचार करते समय यह न भूलना चाहिए कि यह काव्य ग्रन्थ है इतिहास नहीं। यदि जायसी के पद्मावत की अनैतिहासिक घटनाओं को लेकर इतना शोरगुल नहीं हुआ तो कोई आवश्यक नहीं कि पृथ्वीराज रासो पर ऐसा कोप किया जाए।

प्रश्न ५—रासो के भाव पक्ष पर एक सारगर्भित लेख लिखिए।

तर्क वितर्क की उलझनों में उलझा मानव कभी-कभी ही नहीं अपितु प्रायः किसी विशेष वस्तु की आत्मा में प्रवेश कर उसके सौंदर्य को नहीं देख पाता। यह मानव की आदि प्रवृत्ति है कि बुद्धिवाद के झूठे भ्रम में फँस कर हृदय की सरल स्वाभाविकता का भी वह अपमान कर बैठता है। हिन्दी साहित्य का आदि महाकाव्य भी मानव की इसी तर्क बुद्धि का शिकार बना है। रासो की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता के विवादों में सारे विद्वानों का ध्यान उसके काव्य सौष्ठव एवं भाव-सौंदर्य पर गया ही नहीं। इन वर्षों [illegible] की नीति के कारण उसके साहित्य का लोप होना दिखाई दिया किन्तु अब कुछ देर के लिए हम रासो की प्रामाणिकता के विवादग्रस्त प्रश्न को आँखों से ओझल कर उसके भाव सौन्दर्य पर प्रकाश डालेंगे। अस्तु।

रासो एक प्रबन्धकाव्य है और प्रबन्ध काव्य में कवि कथा के साथ-साथ एक ऐसी सुन्दर रसधारा का निर्माण करता है जिसका प्रभाव सहृदय में होता है। प्रबन्ध एक धारा है, मुक्तक बिखरे मोतियों का एक [illegible]। प्रबन्ध में वर्णन विस्तारात्मक होता है, संक्षेपात्मक नहीं। इसी प्रकार से प्रबन्धकाव्य के भावपक्ष में जीवन की विविधताओं का, विभिन्न मानसिक दशाओं का भी समुचित नियोजन हुआ करता है और यह भी [illegible] कि उसमें जीवन के किसी एक अंग विशेष का, [illegible]

घन घरजै घरहरै पलक निसि रैन निघहै।
सजल सरोवर दिष्पि दियो ततघन घन छहै॥
जब बद्दल बरषत प्रेम पल्लहो निरंतर।
कोकिल सुर उच्चरै अग पहरन्त पचसर॥
× × ×
कुसुमन कुञ्ज सरीर सम्मरं सलित्र दूभर सहयं।
नद्दोर दादुर मोर नद्दुर वनसि चद्दरि वद्दय॥

अर्थात् हे प्रियतम ! जब बादल बरस रहे हो, और सजल सरोवरो को देखकर सौभाग्यवतियो के हृदय विदीर्ण हो रहे हो, कोकिलो की वाणी के साथ जब प्रेम-देवता बाण वर्षा कर रहे हो, तब जाना नही चाहिए।

भावपक्ष के समुचित नियोजन मे रस-परिपाक की कुशल क्षमता के बिना कभी कार्य नहीं चलता। इसका मूल कारण यही है कि रस काव्य की आत्मा है, काव्य का मूलोद्देश्य ही पाठक या श्रोता के हृदय में रस का वहन कराना है, और यदि इस दृष्टि से रासो को परखा जाए तो रासो में अनुपम चित्र दृष्टिगत होगे। यद्यपि उनमें वीर और शृङ्गार की ही प्रधानता मिलेगी, किन्तु फिर भी अन्य रसो का वहन भी हो पाया है उदाहरणस्वरूपेण क्रोध की अभिव्यक्ति मे यद्यपि रौद्र रसानुभूति नहीं हो पाती किन्तु फिर भी भावो का वर्णन तो हो ही पाया है। इसी प्रकार से वीभत्स के वर्णन भी रासो में प्रचुर मात्रा में है यथा सिर फाटना, कुत्तो का मास खाना आदि वीभत्स के उदाहरण ही हैं। इसी प्रकार से भयानक रस का परिपाक भी रासो में हुआ है। विशेषरूपेण 'ढूंटि-ढूंढि खाए नर-ताते ढूंढा नाम' अर्थात् ढूंट ढूंढ कर खाने के कारण दानव का नाम ढूंढा पडा वाला पद तो इस प्रकार के सुन्दरतम पदो में परिगणित किया जा सकता है। लेकिन हास्य का वर्णन रासो में नहीं है और इसके लिए कवि पे ऊपर किसी प्रकार का दोषारोपण भी नही किया जा सकता क्योकि वीर और हास्य का साथ भी नही बैठता। इसी प्रकार से करुण और शान्त रसो के कुछ चित्र भी रासो में देखने को मिल जायगे। लेकिन इन

सभी रसों का परिपाक करते समय रासो के प्रणेता की वृत्ति उनमें लीन नहीं हुई है। वह तो वीर और शृङ्गार के प्रसंगों में ही रमी है और इन दोनों क्षेत्रों में कवि ने अद्भुत सफलता की प्राप्ति भी की है। शृङ्गार के वर्णन में यदि कवि रस का सन्निवेश कर भावों की उत्तेजना बढ़ा देता है तो वीर रस का परिपाक इतनी सफलता से हुआ है कि भुजाएँ फड़क जाती हैं। वीर रस का वर्णन और युद्ध का वर्णन जहाँ कहीं भी कवि ने किया है वहीं उसका काव्य निखर कर अपने सौन्दर्य में और भी निखर गया है। इसी अभिमत की पुष्टि के लिए एक उदाहरण देखिए—

मच्चे कूह कूहं बहे मार मारं चमक्कै चमक्के करारं तुषारं।
भभक्कै भभक्कै बहे रक्त धारं सनक्कै सनक्कै बहे बान मारं॥

इसी प्रकार से शृङ्गार रस के चित्रण में कवि ने उसके दोनों पक्षों यथा संयोग और वियोग का सुन्दर निर्वाह किया है। वियोग की परिस्थिति में नायिका की मनोदशा के प्रत्येक विकार को उन्होंने अत्यन्त सफलतापूर्वक चित्रित किया है। पद्मावती की विरह दशा की जो कौशलपूर्ण अभिव्यक्ति की गई है उसका एक चित्र देखिए—

संदेश सुनत आनन्द नैन।
उमगीय बाल मनमथ्थ सैन॥
तन चित्त चीर डारयो उतार।
मंजन मयंक नव सत सिंगार॥
भूषन मंगाय नखसिख अनूप।
सजि सेज सनो मनमथ्थ भूप॥

इस स्थल पर हमारे सामने है [illegible] ही रूपसी से पद्मावती [illegible] जब मिलन उपस्थित हो जाता है तब उसकी नायिका भी निज [illegible] इसी प्रकार से रूप का अनुभव करती है। रासो में [illegible] इस प्रकार किया है—

हुलसे नैन दरस मदमाते।
हुलसे अधर रंग रस राते॥
हुलसा वदन ओप रवि पाई।
हुलसि हिया कंचुकि न समाई॥
हुलसे कुच कसनी वद टूटे।
हुलसी भुजा, वलय कर फूटे॥

वस्तुत रस-परिपाक के क्षेत्र में चन्द ने अद्भुत सफलता की प्राप्ति की है, विभाव अनुभाव और संचारी भावों की अनुकूल योजना उपस्थित की है। मृत्यु या वन्दी होने पर रानियों के करुण विलापमय चित्र खींचने में कवि का हृदय भावुक हुए बिना नहीं माना है। फलत हमें कहना पडता है कि रस-योजना के क्षेत्र में रासो के प्रणेता को अद्भुत क्षमता प्राप्त थी।

समग्रत हम कह सकते हैं कि रासो का भावपक्ष अपने आप में अत्यन्त समृद्ध है। जीवन के विविध क्षेत्रों और उनमें भी मार्मिक स्थलों को चुनने की कवि में क्षमता है। प्रकृति निरीक्षण, षड् ऋतु वर्णन और रूप वर्णन में यद्यपि कवि परम्परा पालन का निर्वाह किया गया है किन्तु फिर भी उनमें मौलिक उद्भावनाओं की कमी नहीं और रस-योजना के क्षेत्र में तो उसने कमाल ही कर दिया है।

प्रश्न ६—प्रकृति-निरीक्षण की दृष्टि से चंद्रवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो की विवेचना कीजिए।

विश्व साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि प्रत्येक भाषा के काव्य में प्रकृति चित्रण को अति महत्वपूर्ण स्थान की प्राप्ति हुई है। इतना ही नहीं कितने ही स्थल तो ऐसे हैं जहाँ पर कवि ने मानव को छोड़ कर केवल प्रकृति का चित्रण करना अधिक उचित समझा है। उसके आकर्षक रूप पर मनो-मुग्ध हो अपने मानस-पटल पर उसके सुन्दर चित्र अंकित किए हैं। अदम्य वेग से बहती हुई नदियों, लहलहाते और हरे-भरे वृक्षों, पौधों, पशु, पक्षियों, रात्रि, प्रभात व संध्या आदि से तादात्म्य स्थापित कर अलौकिक सुख की प्राप्ति की

है। हमारे प्राचीन साहित्य में संस्कृत के कवियों वाल्मीकि, भवभूति, कालिदास, भास आदि को प्रकृति का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ। इसका एक स्वाभाविक कारण यह है कि मानव अथवा कवि प्रकृति की गोद में जन्म लेता है और प्रकृति के प्रांगण में ही फलता-फूलता है। फिर भला वह प्रकृति के साथ चित्र क्यों न अंकित करे? एक अन्य कारण यह है कि प्रकृति सुख में और उल्लास में, दुःख में और निराशा में सदैव मानव के साथ रही है, फिर कवि जो मानव भावनाओं का प्रतिनिधित्व करता है, प्रकृति को कैसे विस्मृत कर सकता है।

कविवर चन्द्रवरदाई ने भी अपने काव्य में प्रकृति का चार अंकन किया है किन्तु उनका प्रकृति-वर्णन संस्कृत कवियों की शैली पर ही आधृत है। उदाहरण के लिए षट् ऋतु वर्णन को लिया जा सकता है। पृथ्वीराज चौहान कन्नौज जाने के लिए तैयारियाँ कर रहे हैं, विदा लेने के लिए वे इच्छिनी रानी के पास जाते हैं। किन्तु यह अवसर वसंत ऋतु का है अतः रानी वसंत ऋतु का शृंगार और आकर्षण का वर्णन करके राजा को रुक जाने के लिए बाध्य कर देती है। वह कहती है—हे प्रिये! जब कदंब और आम फूल गए हों, भौंर आ गए हों, रात की शीतलता में कोई कमी न हो, ऐसे में क्या कोई अपनी पत्नी को विरहिणी बना कर जाता है? इसी प्रकार राजा अन्य चार रानियों के पास चार विभिन्न ऋतुओं में आज्ञा लेने को जाते हैं और चारों ही रानियाँ प्रकृति का ऐसा रूप प्रस्तुत करती हैं कि राजा को रुकने के लिए मजबूर होना पड़ता है। इस प्रकार की परम्परा में पुण्डीर रानी के द्वारा किया गया ग्रीष्म ऋतु का वर्णन अति सुन्दर बन पड़ा है। पुण्डीर रानी का कथन है—

धीन तरुनी तन तपै नित धाय रयन दिन
निसि सारो परगलै नहि कलो नील अरध छिन।
× × ×
सुनि कंत सुमति संपति विपति ग्रीषम गेह न छंडिय।

दिशाओं का धधकना, खेत का सूखना आदि वर्णन कर भावावेश में प्रियतम को जाने देना नहीं चाहती। वस्तुत इस प्रकार के वर्णनों के द्वारा कवि ने इस बात का परिचय दिया है कि विभिन्न ऋतुओं का मानव हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है और इसीलिए डा० विपिन बिहारी द्विवेदी ने लिखा है— "कथा के इस प्रसग में षट ऋतुओं का रोचक वर्णन पढ़ने को मिलता है। यद्यपि उद्दीपन को ले कर ही इसकी रचना हुई है परन्तु यह रासोकार के ऋतु विषयक ज्ञान, प्रकृति निरीक्षण, मानवीय व्यापारों को अनुरंजना और वर्णन कौशल का परिचायक है।" "रासो का प्रस्तुत ऋतु वर्णन सूफी कवि जायसी के पद्मावत के षट् ऋतु वर्णन के समान ईश्वर से मिलन और वियोग की प्रतीकता के मिस नहीं, भक्त कवि तुलसी के मानस के किष्किन्धा काण्ड की वर्षा और शरद् के वर्णन की भांति नीति और भक्ति आदि का उपदेशक नहीं, राठौर नरेश पृथ्वीराज के खण्डकाव्य 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' के ऋतु वर्णन की तरह अलंकारों से बोझिल, उलझा हुआ और रूखा नहीं फिर भी उसमे अपना ढंग और अपना आकर्षण है तथा मुख्य कथानक से उसे जोड़ने का कवि-चातुर्य परम सराहनीय है।"

हिन्दी साहित्य में प्रकृति-चित्रण कई प्रकार से हुआ। कहीं इसके सौन्दर्य का वर्णन किया गया तो कहीं उनका मानवीकरण हुआ, कहीं अर्थ-ग्रहण और बिम्ब-ग्रहण के रूप को लिया गया तो कहीं प्रकृति में नाम परिगणनात्मक शैली को ही अपनाया गया। पृथ्वीराज रासो में यद्यपि ढूंढने से इन सभी प्रकारों के एकाध उदाहरण मिल जाएंगे किन्तु मुख्यत प्रकृति के तीन रूप आलम्बन रूप, उद्दीपन रूप और अलंकरण रूप ही देखने को मिलेंगे और आगामी पंक्तियों में हम इन्हीं तीनों रूपों के संबंध में विवेचन प्रस्तुत करेंगे। अस्तु।

आलंबन रूप में प्रकृति वर्णन—आलंबन रूप में प्रकृति का चित्रण उस अवस्था में हुआ करता है जब प्रकृति कवि के लिए साधन न बन कर साध्य बन जाया करती है। तब कवि अपनी सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति के द्वारा प्रकृति का यथा तथ्य चित्रण करता है। प्रस्तुत काव्य में इस रूप में प्रकृति वर्णन

पर्याप्त मात्रा में मिलता है परन्तु राजसी वातावरण में पले होने के कारण वह प्रकृति का इस रूप में चित्रण अधिक विस्तृत और स्वाभाविक रूप में नहीं कर पाए हैं। लेकिन हमारे इस कथन का यह भी अभिप्राय नहीं है कि प्राकृतिक सौंदर्य उनके लिए आकर्षण की वस्तु नहीं रहा है। वस्तुतः कवि ने अपनी सीमाओं में आबद्ध रहते हुए भी इस प्रकार के प्रकृति वर्णन के सुन्दर चित्र प्रस्तुत किए हैं। निम्न पंक्तियों में इसी प्रकार का एक सजीव चित्र देखा जा सकता—

गज्झरन झरिय सम्मीर मद्द। निझ्झरत झरत नद घोरनद॥
निझ्झरहि झरिय झारहर करट। उम्भरहि ललित ललिता लपूर॥

उद्दीपन रूप में प्रकृति वर्णन—उद्दीपन रूप में प्रकृति वर्णन उस अवस्था में हुआ करता है जब कवि प्रकृति की योजना भावों को उद्दीप्त करने के लिए किया करता है। और कहने की आवश्यकता नहीं कि रासो में इसी प्रकार के प्रकृति-वर्णन की प्रधानता है। षट् ऋतु वर्णन की योजना तो स्पष्टतः इसीलिए की गई है। केवल रासो में ही नहीं हिन्दी साहित्य की सम्पूर्ण कृतियों में इसी प्रकार के वर्णन की प्रधानता है। वस्तुतः आलंबन और मानवीकरण के रूप में प्रकृति-चित्रण तो पाश्चात्य साहित्य के प्रभावस्वरूप आधुनिक युग में ही हुआ है।

उद्दीपन रूप में प्रस्तुत किए गए प्रकृति-चित्रण में रासो की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि जहाँ भारतीय कवियों ने प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण प्रायः विरहिणी नायिका की भावनाओं से चित्रित किया है वहाँ रासो में नायक पृथ्वीराज चौहान भी [illegible] के चित्र में वर्षा के [illegible] उद्दीपन हो व्यथित हो जाते हैं। [illegible] चौहान [illegible] कहा गया है—

मोर सोर चिहुँ ओर। घटा आसाढ़ वधि नभ ॥
वक दादुर झिंगुरन। रटन चातिग रंजत सुभ ॥
नील वरन्न वसुमतिय। पहिर आंभ्रन अलकिय ॥
चंद वधू सिर व्यज। धरे वसुमत्ति सु राज्जय ॥
वरपत वूंद घन मेघसर। तव सुमिरे जद कुंआरि ॥
.. . . मनमथ्थ करि ॥

अलंकार विधान के रूप में प्रकृति-वर्णन—अलकार विवान के रूप में प्रकृति-वर्णन उम अवस्था में हुआ करता है जव कवि किसी वस्तु या व्यापार की तुलना करते समय प्रकृति से उपमानो का सचयन किया करता है। जब कवि को मजुल चद्रमा सौदर्य से पूर्ण लगता है, नायिका के शरीर के विभिन्न अवयवो को देख कर जव उसे विभिन्न प्राकृतिक उपकरण याद आ जाते हैं। पृथ्वीराज रासो में प्रकृति का इस रूप में चित्रण पर्याप्त मात्रा में हुआ है। निम्न पंक्तियो में इसी प्रकार का एक चित्र देखा जा सकता है—

चंद वदनि मृगनयनि। भौंह असित कोदण्ड वनि ॥
गग भंग तरलति तरग। वैनी भुअंग वनि ॥
कीर नास अग्रु दिपति। दसन दामिक दारमकन ॥
छीन लक श्रीफल अपीन। चपक वरन तन ॥

× × ×

आसा महीप कव्वी। नवनव कितीय संग्रह ग्रथ ॥
सागर सरिस तरगी। वोहथ्थ्य उक्तिय चलिय ॥

कवि ने एक स्थान पर तो प्रकृति को पावस ऋतु के रूप में ही चित्रित कर दिया है। यथा—

भरि पावस सिर प्राहारं। वरपत रुद्धि धरं छिहवार ॥
पग विज्जुल जोगनि सिरधारं। वग्गी सौ जम्बू परिवार ॥
कटि कूक करें जिनके किरय। मनौं इन्द्रवधू वर मे रचय ॥
भभक्कै सपग्गीन पग्गनि वजें। मुनि वहनि झिंगुर सद्दलजें ॥

लपटाइ सुसोक्किय चेलतरं। पर रभन रभन रभ चरं॥
अकुरी घट्टि येलि सुवीर चर। वहि पावस झार झरं॥

अलंकार-योजना कवि का मुख्य लक्ष्य नहीं है परन्तु इस रूप में प्रकृति चित्रण अधिक मात्रा में दृष्टिगत नहीं होता। वस्तुतः चन्दबरदाई के यहाँ तो प्रकृति-चित्रण अपने सहज स्वाभाविक रूप में ही हुआ है और हिन्दी साहित्य के आदि काल में प्रकृति का ऐसा रम्य चित्र प्रस्तुत कर देने से तो कवि की सफलता और भी अधिक बढ़ जाती है।

प्रश्न ७—रस-योजना की दृष्टि से रासो की समीक्षा कीजिए।

रस काव्य की आत्मा है। जिस प्रकार से मानव जीवन में बाह्य उपकरणों के महत्व के साथ ही साथ प्राणतत्व अर्थात् आत्मा को अत्यधिक महत्व प्रदान किया जाता है ठीक उसी प्रकार से काव्य में रस को। यही कारण है कि संस्कृत साहित्य-शास्त्र में अनेक सम्प्रदायों यथा अलंकार सम्प्रदाय, ध्वनि सम्प्रदाय, रीति सम्प्रदाय व वक्रोक्ति सम्प्रदाय आदि के उपरान्त भी रस सम्प्रदाय ही सर्वप्रमुख स्थान का अधिकारी हुआ।

रासो के प्रणेता ने अपने काव्य ग्रंथ में विविध रसों की समुचित योजना की है किन्तु उसकी मुख्य दृष्टि वीर एवं शृङ्गार की ओर ही रही है। आगामी पंक्तियों में हम इन दोनों रसों का विस्तार से उल्लेख करते हुए अन्य रसों की विवेचना भी प्रस्तुत करेंगे। अस्तु।

रासो सरीखे वीरगाथात्मक काव्य में वीर रस खोजने का प्रयास नहीं करना पड़ता। ये स्थल अपने आप ही हमारे सामने आते रहते हैं और हमारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं। आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारियों की सभी ओर उचित सहित योजना और रस निष्पन्न करती हुई अपनी उत्साह भंगिमा द्वारा दूसरों को भी प्रभावित करती है। कुछ स्थल देखिए—

गजे गज मद मनौं घन भद्द। चिकार चिकार भए सुर सद्द॥
तुरंग नदीन पक्खर लगाम। रागविरच पाखर लोह सुतान॥

चमकंत तेज सनाह सनाह। करैं धर पद्धर राह विराह ॥
झलक्कत टोप सुटोप उतग। मनों रज जोति उद्योत विहग ॥
(आदि पर्व)

× × ×

उट्ठि राज प्रिथिराज धाग मनो लग्ग वीर नट ॥
कढ़त तेग मन वेग लगत मनो वीजु झट्ट घट ॥
थकि रहे सूर कौतिक गगन,
रंगन मगन भइ शोन धर।
हृदि हरषि वीर जग्गे हुलसि,
हुरेउ रगनव रत्त वर ॥
(पद्मावती समय)

रासो में प्रवाहमान वीर रस-पूर्ण धारा की एक सर्व प्रमुख विशेषता यह है कि उसके नायक का चित्रण साहित्य-मनीषियों द्वारा निर्धारित चारों प्रकार युद्ध, दान, दया और धर्मवीर के रूप में चित्रित हुआ है। युद्ध करने और सैन्य सचालन में तो वह इतना दक्ष है कि उनकी समता किसी से भी नहीं की जा सकती। जिस शीघ्रता से वह तलवार निकालता है उस समय ऐसा प्रतीत होता है मानो आकाश से बिजली टूट पड़ी हो। स्वमत पुष्टि के लिए निम्न उदाहरण देखा जा सकता है—

वज्जिय घोर निसॉन रान चौहान चहु दिसि।
सकल सूर सामत समरि वल जंत्र-मंत्र तिसि ॥
उट्ठि राज प्रथिराज वाग लग मनो वीर नट।
कढ़त तेग मन वेग लगत मनो वीज झट्ट घट ॥

इसी प्रकार से दानवीर के रूप में सम्राट पृथ्वीराज का चित्रण अनेक स्थलों पर हुआ है। इसका कारण यह है कि हिन्दू धर्म में दान की बड़ी महिमा बताई गई है। फिर भला हिन्दू सम्राट महाराज पृथ्वीराज का इस रूप में चित्रण क्यों न होता? एक चित्र देखिए कितना सुन्दर बन पड़ा है—

करि सनान गंगोद वह दिय सुगाह दस दान ।
दस तोला तुलि हमें दिय अनदान अपमान ॥

केवल दानवीर और युद्धवीर के रूप में ही नहीं दयावीर और धर्मवीर के रूप में अपने नायक को चित्रित करने में भी लेखक को पर्याप्त सफलता की प्राप्ति हुई है। इस क्षेत्र में कवि की सफलता का एक कारण तो उसकी अपनी कुशलता ही है किन्तु इसके साथ ही साथ एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह है कि उसके नायक का चरित्र ही इस प्रकार के गुणों से पूर्णत भरा हुआ है। यह उसके चरित्र की ही विशेषता है कि उसने चौदह बार चढ़ाई करने वाले अपने प्रबल शत्रु शहाबुद्दीन को हर बार क्षमा करने के साथ ही साथ सम्मान सहित उसे मुक्त किया और आदर के साथ उसके राज्य को भिजवाया।

अनेन प्रकारेण हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि कवि को वीर रस का चित्रण करने में पर्याप्त सफलता की प्राप्ति हुई है।

वीर रस के समान ही जिस अन्य रस का व्यापक प्रयोग इन रासो में देखने को मिलता है, वह है शृङ्गार रस।

यद्यपि वीररस प्रधान काव्य होने, युद्ध की मारकाट, सम्राट के शौर्य आदि के वर्णन के कारण इस प्रकार के प्रसंगों को अवतारणा के लिए कोई विशेष स्थान नहीं था किन्तु फिर भी इस रस का स्वल्प प्रवाह कवि की कुशलता का एक स्पष्ट प्रमाण देता है। कवि की सबसे बड़ी विशेषता इस बात में दृष्टिगत होती है कि उसने वीर रस पूर्ण स्थलों में भी शृङ्गार की समुचित योजना की है। एक चित्र देखिए—

रासो में शृङ्गार-रस की योजना करते समय कवि ने इसके दोनों उपविभागों—संयोग और वियोग—की ओर भी पर्याप्त ध्यान रक्खा है।

संयोग शृङ्गार के क्षेत्र मे कवि ने रूप-सौन्दर्य, वय सन्धि और नख-शिख वर्णन की सुन्दर योजना की है। इन सभी वर्णनों के क्षेत्र में रासो के प्रणेता को इतनी सफलता की प्राप्ति हुई है कि उसके शब्द-चित्र हमारे सामने चल-चित्र की तरह नाच जाते हैं। रूप-सौन्दर्य के अन्तर्गत यदि कवि ने वस्तुगत, अलंकारिक और वासनात्मक सभी प्रकार के रूपों का संयोजन किया है तो नख-शिख वर्णन में कल्पना की विशालता, सूझ की विविधता इतनी बढ़ी-चढ़ी है कि उसके द्वारा शीघ्र ही रीतिकालीन काव्य का स्मरण हो आता है। एक चित्र देखिए—

नयननि कज्जल रेख तिक्ख तिक्खन छबि धारिय।
श्रवननि सहज कटाच्छ चित्तकर्षन ठान ठारिय॥
भुज मृणाल कर कमल उरज अंबुज कालिय दल।
जघ रभ करि स्वग गमन दुति हस करि छल॥
देव अरु जक्खि नागिन नरिय गरहि गर्व दिक्खत नयन॥
इछिनी इक्खि लज्ज सहज कित्ति सक्ति कब्बिय वरन॥

उक्त वर्णन मे कवि ने जिन-जिन अगों का वर्णन किया है उनमें अगो के साथ उनके कार्य व्यापार का भी कितना अभेदपूर्ण वर्णन है। 'तिक्ख तिक्खन छबि धरिय' और 'भुज मृणाल कर कमल' में कवि ने कितना सुन्दर चित्र प्रस्तुत कर दिया है।

इसी प्रकार से वय सधि के चित्रों का अभाव भी रासो में नहीं है। पद्मावती की वय सन्धि की अवस्था के सौन्दर्य का चित्र कवि ने कितनी सजीव और मौलिक उद्भावनाओं के साथ खींचा है, देखिए तो सही—

मनहुँ कला ससिभान, कला सोलह सो बन्निय।
बाल बैस ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय॥

त्रिगंसि कमल स्रिग भमर बेन पजन मृग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिंब मोति नष सिष अहि घुट्टिय॥
छत्रपति गयंद हरि हंस गति बिह बनाय सचै सचिय।
पदमनिय रूप पदमावतिय मनहु काम कामिनि रचिय॥

इस छन्द के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि कवि ने 'बाल बैस ससि ता समीप' आदि वाक्यों से वय सन्धि का एक पूर्ण चित्र उतारने का अति सुन्दर प्रयास किया है।

संयोग शृङ्गार के चित्र कई स्थानों पर अत्यन्त स्थूल हो गए हैं और अश्लीलता की सीमा को स्पर्श करने लगते हैं किन्तु ऐसे चित्रों की संख्या अत्यल्प ही है। अधिकांश स्थलों पर तो नैसर्गिक भावना के ही दर्शन होते हैं।

शृङ्गार रस का दूसरा उपविभाग वियोग वर्णन हुआ करता है। वस्तुतः भावों की जितनी तीव्रता इस अवस्था में हुआ करती है उतनी किसी अन्य अवस्था में नहीं। इसलिए विश्व की प्रत्येक भाषा के साहित्य में इस भावना की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। महाकवि चन्दबरदाई के यहाँ भी इस भावना के सुन्दर चित्रों का अंकन हुआ है। साहित्य मनीषियों ने विरह के चार प्रकार बताए हैं—१ पूर्वराग, २. मान, ३ प्रवास, ४ करुण और इन सभी प्रकारों के चित्र रासो में देखने को मिल जायेंगे। इसी प्रकार से रासो की परिस्थिति में नायिका की मनोदशा के चित्र विकार को भी उन्होंने सफलतापूर्वक चित्रित किया है। पद्मावती की विरह दशा की जो मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति की गई है उसका एक चित्र देखिए—

नरेश सुनत आनंद बैन।
उमगीय बाल मनमुग्ध मैन॥
तन नियट चीर उत्तो उतार।
मंजन मयंक नव सत सिंगार॥
भूषन मगाय नष सिष अनूप।
सजि सैन मनो मनमथ्थ भूप॥

इस स्थल पर हमारे नयनो के सम्मुख वरवस ही जायसी के पद्मावत नामक काव्य का वह चित्र उपस्थित हो जाता है जब उसकी नायिका भी प्रिय आगमन के संदेश पर इसी प्रकार के हर्ष का अनुभव करती है। जायसी ने उसकी तत्कालीन शारीरिक अवस्था का चित्रण इस प्रकार किया है—

हुलसे नैन दरस मदमाते।
हुलसे अधर रंग रस राते॥
हुलसा वदन ओप रवि पाई।
हुलसि हिया कंचुकि न समाई॥
हुलसे कुच कसनी बंद टूटे।
हुलसी भुजा वलय कर फूटे॥

वियोगावस्था में संयोग के सभी सुखदाई उपकरण दुख के कारण बन जाया करते हैं। जिन पदार्थों के द्वारा संयोग मे सुखराशि की उपलब्धि हुआ करती थी वही किस प्रकार से विपावत प्रभाववाले बन गए हैं, इसका एक सुन्दर उदाहरण रासो में देखिए—

वही रत्ति पावस्स वही मघवान धनुष्य।
वही चपल चमकंत वहीं वगपत निरष्यं॥
वही घटा घनघोर वही पप्पीह मोर सुर।
वही जमी असमान वही रवि ससि निसि वासुर॥
वेई अकास जुग्गनि पुरह, वेई सहचरि मंडलिय।
सजोगि पचपति कत विन, मुहि न कछू लग्गत रलिय॥

रासो-प्रणेता के विरह वर्णन में एक ध्यातव्य बात यह है कि उसने केवल नायिकाओं के विरह का वर्णन ही नही किया है अपितु नायक पृथ्वीराज को भी विरह के प्रभाव से युक्त दिखाया है। 'शशिवृत्ता समय' में पृथ्वीराज पावस ऋतु में शशिवृत्ता के सौन्दर्य का ध्यान करके उसके विरह में व्याकुल चित्रित किए गए हैं।

रासो में अन्य रसों के चित्र भी सुन्दर बन पड़े हैं यथा रौद्र रस के प्रसग

में कवि ने सांगरूपक के माध्यम से अनेक श्रेष्ठ योजनाएँ की हैं। एक प्रसंग इस प्रकार है—युद्ध रूपी विषम यज्ञ प्रारम्भ हो गया, शस्त्र-बल रूपी वेदपाठ होने लगा, हाथी, घोड़ों और नरों का हवन होने लगा, शीश कटने के रूप में स्वस्तिवाचन आहुति दी जाने लगी, उस हवन-कुण्ड का क्रोध रूपी विस्तार हुआ, कीर्ति रूपी मण्डप तना था, गिद्ध-सिद्ध वैताल रूपी दर्शक थे, किन्नर, नाग, तुम्बरु और अप्सराएँ गान कर रहे थे, इस युद्ध रूपी यज्ञ में वीरों को मुक्ति रूपी तत्व के भोग की प्राप्ति हुई

विषम जग्य आरंभ। वेद प्रारंभ सस्त्र बल॥
है गै नर होमियै। शीश आहुति स्वस्ति फल॥
क्रोध कुण्ड विस्तरिय। कित्ति मंडप करि मंडिय॥
गिद्धि सिद्धि वेताल। पेषि पल साकृत छंडिय॥
तुम्बर सुनाग किन्नर सुचर। अच्छरि अच्छ जु गावहीं॥
मिलि दान अस्त्र अप्पन जुगति। मुगति जुगति तन पावहीं॥

बीभत्स का प्रसंग पृथक् नहीं वरन युद्ध में अन्तर्गत ही आता है। योगिनियों का रुधिर पीना, गिद्धों का चिल्लाना आदि स्वाभाविक दृश्यों का इसमें चित्रण पाया जाता है

पत्र भरं जुग्गिनि रुधिर गिध्धि मंस डकारि।
नच्यो ईस उमया सहित रुंड माल गल धारि॥

स्वतन्त्र रूप से भयानक रस का परिपाक ढुंढा दानव के प्रसंग में मिलता है। 'ढूंढ' रूप मनुष्यों को खाने वाले ढुंढा दानव ने सारा अजमेर नगर उजाड़ डाला। उसके भय से उस नगर के समीपस्थ वन में किसी जीव का प्रवेश न था और दिशाएँ भी शून्य हो गई थीं, उसकी घोर हिंसकता से आगे मानव तथा पशु जीवों को त्रास बढ़ा, फिर नदी हिंस्र जन्तु भी भाग गये हुए थे

सो दानव अजमेर वन। रह्यो ढूंढ धन ध्वंस॥
सुन्न दिसानन जीव ना। थिर थावर जंग गन॥

तह सिंघ न भ्रग्ग न पपि वन। दिसि सून भई डर जीव घन॥
तिहि ठाम गजं वर वाजि नन। तिहिं नामन सिद्धय साधकन॥

आश्चर्य पैदा करने वाले अर्थात् अद्‌भुत रस के स्थल भी रासो में अनेक हैं। श्रापवश मनुष्य का मृत्यु के उपरांत असुर हो जाना और असुर का आसुरी स्वभाव-वश मनुष्यों को ढूंढ ढूंढ कर खाना, वीरों का वशीकरण, देवी की सिद्धि और साक्षातकार, गड़े खजाने से दैत्य और पुतलों का निकलना, मन्त्र-तन्त्र की विलक्षण करामातें, वरुण के वीरों की उछल-कूद, वीर-गति पाने वालों का अप्सराओं द्वारा वरण, आत्माओं का भिन्न, लोक-वास, कबधों का युद्ध आदि इसी प्रकरण के प्रसंग हैं। कवि ने इनका वर्णन इस प्रकार किया है जैसे ये अघटित घटनाएँ न होकर सत्य और साधारण हों।

वात्सल्य और शोक के प्रसंग रासो में इने गिने ही हैं परन्तु इतना होने पर भी सुन्दर बन पड़े हैं। उनका निम्न पद, जिसमें पृथ्वीराज के बाल्य जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गई है सूर के किसी भी बाल-वर्णन से सम्बन्धित पद से टक्कर ले सकता है—

अगुरिन लग्गि रांगि चलत लाल। सर मद्धि उठत गजहंस चाल॥
मिलि वाल-जाल कवि रही केलि। चढ रही दृष्ट जनु बीज वेलि॥

शोक अर्थात् करुण रस के प्रसंग रासो में कई हैं यथा कमधज्ज नरेश के भाई वालुकाराव की मृत्यु पर अशुभ स्वप्न देखने के उपरांत उसकी स्त्री का विलाप, कन्नौज-युद्ध में प्रमुख सामंतों के मारे जाने पर शोक, गजनी के कारागार में बंदी पृथ्वीराज का नेत्र-विहीन किए जाने के उपरांत पश्चाताप तथा अन्तिम युद्ध का परिणाम चीन्हद्र द्वारा सुनकर कवि का दुःख इसी प्रकरण के प्रसंग हैं परन्तु करुण का सबसे प्रधान स्थल सती होने वाला दृश्य है जो इतना शांत और गम्भीर है कि हृदय पर एक वीतराग त्याग का प्रभाव डाले बिना नहीं रहता।

हास्य के स्थल रासो में एकाध ही हैं और वह भी वाणी और वेश के

कारण ही उद्भूत हुए हैं। कान्यकुब्जेश्वर के दरबार में महाराज पृथ्वीराज और चन्दबरदाई के प्रश्नोत्तरों में इसी प्रकार का हास्य उद्भूत हुआ है।

वीरगाथाकाव्य होने के कारण शान्त रस का रासो में प्रायः अभाव ही पाया जाता है और वीर रस का विरोधी होने के कारण भी उनमें निर्वेद की व्यञ्जना के लिए अवसर नहीं है। फिर भी इस रस का सकेत करने वाले दो प्रसंग पाए जाते हैं—एक तो ढुंढा दानव की कठोर तपस्या का और दूसरा दिल्लीश्वर अनगपाल का वैराग्य। किन्तु वास्तव में देखा जाए तो इन स्थलों को भी शान्त रस का विधायक नहीं माना जा सकता क्योंकि ढुंढा ने जीवन मुक्ति के हेतु तपस्या नहीं की थी और अनगपाल का वैराग्य स्थायी न था, वे सर्वस्व त्याग कर विरक्त हुए परन्तु उस त्यागी हुई वस्तु की प्राप्ति के हेतु फिर झुके, युद्ध किया, पराजित हुए, तब पुन तपस्या करने चले गए।

परिस्थिति विशेष में नव रसों के एक साथ उद्रेक करने की सिद्धि भी रासोकार ने कई स्थलों पर विभिन्न प्रसंगों में दिखाई है। कन्नौज दरबार में छद्मवेशी पृथ्वीराज को पहचान कर सुन्दरी दासी कर्णाटकी ने लज्जा से घूंघट खींच लिया परन्तु चन्द के इशारे से तुरन्त ही उसे पलट दिया। इस घूंघट खोलने और बन्द करने के व्यापार ने दरबार में नवरस उत्पन्न कर दिए। किन्तु इस प्रकार के प्रसंगों के सम्बन्ध में उस चमत्कार का सञ्चार नहीं हो पाया है जो सचमुच में एकदम आनन्ददायिनी हिलोर उत्पन्न कर सके। वस्तुत ऐसे प्रसंग हमारे मस्तिष्क को चमत्कृत तो करते हैं किन्तु हृदय में किसी प्रकार की रसधारा का सञ्चार कराने में सहायक नहीं हो पाते।

अन्तत कहा जा सकता है कि रसयोजना की दृष्टि से रासो के प्रणेता को पर्याप्त सफलता की प्राप्ति हुई है।

प्रश्न ८—भाषा, छन्द और अलंकार की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा

कला पक्ष की दृष्टि से रासो का मूल्यांकन कीजिए।

यद्यपि यह सत्य है कि काव्य की अधिकांश श्रेष्ठता भावों की उत्कृष्टता पर निर्भर होती है तथापि यह भी उतना ही सत्य है कि कला पक्ष के अभाव में भाव पक्ष की सत्ता स्थिर नहीं रह सकती। चाहे किसी कवि के भाव कितने ही स्तुत्य हों जब तक वह भाषा अर्थात् कला पक्ष का आश्रय लेकर उन्हें अध्येता के समक्ष प्रस्तुत नहीं करता तब तक उसका अस्तित्व निरर्थक है। अत यह निश्चित है कि काव्य में भाव पक्ष के समान ही कला पक्ष का भी अति महत्वपूर्ण स्थान है।

कला पक्ष की दृष्टि से विवेचना करते समय तीन बातों की ओर अधिक ध्यान रखना पड़ता है—भाषा, छंद और अलंकार की ओर। और रासो की समीक्षा करते समय हम इन्हीं तीन बातों को मुख्यरूपेण दृष्टिपथ में रक्खेंगे।

भाषा—रासो की भाषा की अनेकरूपता के सम्बन्ध में अनेक मत प्रचलित हैं यथा—(१) इस महाकाव्य की भाषा अपभ्रंश है। (२) यह राजस्थानी (डिंगल) की रचना है। (३) पृथ्वीराज रासो ब्रजभाषा (पिंगल) की रचना है। (४) इसमें नाना भाषाओं का मिश्रण पाया जाता है। किन्तु इन सभी मतभेदों के होते हुए भी यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि रासो की भाषा भावानुगामिनी है अर्थात् वीर भावों को अभिव्यक्त करने में जहाँ वह अत्यन्त ओजपूर्ण हो जाती है वहाँ कोमल भावों की अभिव्यक्ति के समय अति मधुर और प्रसाद पूर्ण। उदाहरण के लिए कोमल पदावली से युक्त निम्न चित्र को देखा जा सकता है जहाँ कवि ने नायिका पद्मावती के रूप-माधुर्य का वर्णन किया है—

वेस्या वेष्ठित भूप रूप मनसा शृङ्गार हारावली।
सोयं सूरति लच्छि अच्छित गुनं वेली मुक्तामावली॥
का वर्नो उक्ति जुक्ति मनय त्रैलोक्ययं साधमं।
मोयं बाल विरत्त दृष्ट विद्रमं कामोद जोगे सर॥
रूप नदि कटाच्छ कूल टूट्यौ भायं तरंगं बरं।
हावं भाव ति मीन भ्रामित गुन सिद्धं मन भंजनी॥

सोयं जोग तरंग रूपं ति धरं त्रैलोक्य ना ता रूपं ॥
सोय साह महायदीन प्रद्दियं अनंग क्रीडा रम्म ॥

इस पद में कवि ने द्वित्वो, संयुक्ताक्षरों तथा ट 'वर्ग' के शब्दों का प्रयोग शृङ्गार के कोमल वर्णन में व्यवधान समझ कर नहीं किया है। किन्तु दूसरी ओर वीर और रौद्र रस के स्थलों में कटु शब्दों का ही प्रयोग हुआ है। महाराज जयचन्द के क्रोध के वर्णन में देखिए कैसी ओजपूर्ण सजीव भाषा का प्रयोग किया गया है—

सुनत पंग कवि वयन, नयन श्रुत वदन रत्तवर।
भुजन घंक रद अधर, चंपि उर ससि साम्भर ॥
कोप झलमलि तेज गुन विक्रम अरि कम्मह।
सगुन विचार कमध, दिष्पि दिसि चंद सु पिम्मह ॥
आदर सुभट्ट राजिन्द किय अंग ऐडाह विस्तारि करि।
सत मिलन मोहि संभरि धनिय, कहाँ वत्त नृप विरद धर ॥

इतना ही नहीं कवि की भाषा में भावों के मूर्त्तीकरण की अद्भुत क्षमता है। मूर्त्तीकरण की यह क्षमता जहाँ एक ओर युद्ध-भूमि के द्वन्द्वों के वर्णन में देखी जा सकती है तो दूसरी ओर शशिव्रता, इन्छिनी और पृथाकुमारी की वय:सन्धि की अवस्था का चित्रण करने में। इन चित्रों में यौवन का उभार, नव-यौवना के मन में अपने प्रियतम के प्रति उठने वाले नाना मधुर भाव, रंगीन कल्पनाएँ, नवीन काम-वृत्तियाँ, संवेदनाओं आदि का चित्रण सुन्दर बन पड़ा है। शशिव्रता की वय: सन्धि का वर्णन देखिए कितना यथार्थ है—

सम सैसव सुद्ध समान भय। रवि बाल ससि जनु लै उदयं ॥
वर यौवन जोवन संधि चली। जनु मिलि जनु पिकर बाल गली ॥
जु मद्दो नागि सैसव जुद्धनना। सुगलो सन्नि रजन रापद्दिता ॥
जु दल सुरि मारन भंरुरिना। सुगलो सुरेस हुरी सुद्दिना ॥
वत्त प्रुगानन सगति, पग सहुरिय उट्ठ हुन।
त्यों सैसव उतरिय चढ्ढिय वैसह किसोर तुन ॥

शीतल मद सुगंध आइ रितिराज अन्वान।
रोम राइ संग कुच, नितव तुच्छ मरसानं॥
वड्ढै न सीत कटि छीन हूँ लज्ज मान टंकनि फिरै।
ढकै न पत्त ढकै कहे वन वसत मन्त जु करै॥

वस्तुत कवि चन्द ने वडी ही सशक्त भापा का प्रयोग किया है। शब्द-चयन में कठोरता, कटुता और मृदुता दोनों का ही समावेश है। वीर रस के चित्रण में वह ऐसे शब्दो का प्रयोग करता है जिसके द्वारा यह प्रतीत होता है कि स्वयं कवि ही युद्ध भूमि पर खडा हुआ विरोधी सेना को ललकार रहा हो। सेना प्रयाण की गतिशीलता चित्रित करने के लिए कवि ने ऐसे शब्दो का प्रयोग किया है जिससे सैनिको के मार्च करने का दृश्य अंकित हो जाता है। और इन सभी विशेषताओ को अपने में समाहित करने के लिए कवि ने देशी-विदेशी सभी प्रकार के शब्दो का प्रयोग किया है अर्थात् कितने ही स्थलो पर संस्कृत के छंद, तत्सम शब्दों का प्रयोग और ब्रजभापा का प्रवाह लक्षित होता है तो कितने ही ऐसे स्थल भी मिल जाएँगे जहाँ कवि ने डिंगल भापा का प्रयोग किया है। दोनों ही प्रकार के कुछ चित्र देखिए अपने आप में कितने सुन्दर वन पडे हैं—निम्न पद्य में कवि सरस्वती के रूप का वर्णन करता है और अप्रत्यक्ष रूप से विघ्न वाधाओ को दूर करने की प्रार्थना करता है—

मुक्ताहार विहार सार सुवुधा अव्वा वुधा गोपिनी।
सेतं चीर सरीर नीर गहिरा गौरी गिरा जोगिनी॥
वीना पानि सुवानि जानि दविजा हंसा रसा आम्मिनी।
लवोजा चिहुरार भार जघना विघ्ना घना नाम्मिनी॥

इस पद में संस्कृत के शार्दूल-विक्रीडित छंद में तत्सम शब्दो का प्रयोग दृष्टव्य है। इसी प्रकार से अन्य अनेक उदाहरण भी देखे जा सकते हैं।

अन्ततः कहा जा सकता है कि रासोकार का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वह जैसे चाहता है शब्दों का प्रवाह मोड देता है, हर शब्द जैसे उसके इशारे पर नाचता चलता है और भावावेग में धारा-प्रवाह शब्दो को देखकर ऐसा

प्रतीत होता है जैसे इस कवि के पास शब्द-भण्डार की कमी ही नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर वह अरबी, फारसी के शब्दों को भी अपनी रचना में समाहार कर लेता है परन्तु बिहारी आदि के समान बहुत मरोड़-तरोड़ के साथ नहीं। इसीलिए डा० नामवरसिंह चन्द की भाषा के सम्बन्ध में उद्-घोषणा करते हुए कह उठते हैं—भावानुकूल भाषा के मद और तीव्र सौंदर्य को जिन्हें चाह है वे चन्द के पास बार-बार मंडराएँगे।

छंद-योजना—छंद भाषा की गति तथा भंगिमा है इसलिए भाषा पर पूर्ण अधिकार रखने वाले कवि चन्द्रबरदाई के यहां सुन्दर छंद-योजना का होना भी स्वाभाविक ही है। हिन्दी का आदि काव्य-ग्रन्थ होने के कारण रासो में अनेक ऐसे छंदों का प्रयोग मिलता है जो या तो अप्रचलित हैं या छंद-शास्त्र में उनका उल्लेख अन्य प्रकार से मिलता है। इतना ही नहीं अनेक प्रकार के छंदों के प्रयोग को देखकर तो केशव कृत रामचंद्रिका का स्मरण हो आता है जहां पर एक ही सर्ग में अनेक प्रकार के छंदों का प्रयोग इसी प्रकार से परि-लक्षित है जिस प्रकार से रासो में सर्गों में। किंतु रासो में छंद-योजना के क्षेत्र में पर्याप्त वैविध्य होते हुए भी कथा का प्रवाह सुगठित रूप से चलता है। उसमें रामचन्द्रिका के समान कहीं भी विशृङ्खलता देखने को नहीं मिलेगी। इसीलिए तो डा० विपिन बिहारी त्रिवेदी का कथन है—"विविध आकार प्रकार वाले रासो के प्रस्तावों की विषम छंद-योजना और उसका स्वच्छंद दीर्घ विस्तार सरसता का साधक है, बाधक नहीं। केशव की रामचन्द्रिका और सूदन के सुजान चरित्र सदृश रासो में भी छंदों का मेला है परन्तु उनकी भांति इसके छंद कथा-प्रवाह में अवरोध नहीं डालते वरन् अवसर के अनुकूल ओज, माधुर्य और प्रसाद गुणों की सफल सृष्टि करते हैं।" परन्तु हम साहस के साथ कह सकते हैं कि कवि ने अपने छंदों का चुनाव बड़ी दूरदर्शिता से किया है। कथा के मोड़ों को भली प्रकार पहिचान कर वर्ण और मात्रा की अद्भुत योजना करने वाला रासो का रचयिता वास्तव में छंदों का सम्राट था।"

कवि चन्द ने अपने काव्य में गाथा, आर्या, दूहा, पद्धरी, अरिल्ल, रोला, मालिनी, दोधक, भुजङ्गप्रयात, मोतियादाम आदि अडसठ प्रकार के छदो का प्रयोग किया है। कवि ने इन सभी छदो का चयन रस और विषय के अनुकूल किया है। कही-कही एक ही रस के लिए एक से अधिक छदो का प्रयोग भी किया गया है लेकिन ऐसे स्थलो पर भी भावो को किसी प्रकार की क्षति नही पहुँचाई गई है। इसीलिए तो डा० नामवर सिंह पृथ्वीराज रासो की भूमिका में लिखते हैं—"वस्तुत. हिन्दी में चन्द को छंदों का राजा कहा जा सकता है। भाव भगिमा के साथ-साथ दनादन भाषा नये नये छदों में गति धारण करती चलती है और विशेषता यह है कि बल खाती हुई नदी मे बहते हुए चित्त को कोई मोड नहीं खटकता। छद-परिवर्तन के प्रवाह मे सहज आत्म विस्मृति का ऐसा सुख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।"

रासो में प्रयुक्त छप्पय छन्द में वीर भावो की इतनी सुन्दर और सफल अभिव्यक्ति हुई है कि इसी छन्द को बाद के हिन्दी कवियो ने वीर भावो के लिए उपयुक्त समझकर धडल्ले से प्रयोग किया। हिन्दी के प्रमुख कवियों नाभादास, नरहरि, तुलसी, गग, भूषण, सूदन आदि ने वीर रस की अभिव्यक्ति के लिए इसी छद को चुना। निस्सदेह चन्द ने अपनी काव्य-प्रतिभा के कारण इस छद को अत्यन्त लोक-प्रिय बना दिया। सभवत इसीलिए डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी का कथन है—"वैसे तो हर तलवार की टंकार में चन्द्रबरदाई तोटक, तोमर, पद्धरी और नाराच पर उतर आते हैं पर जमकर ये छप्पय और दूहा ही लिखते हैं। "चन्द्रबरदाई छप्पयों का तो राजा था।"

अलकार-योजना—भाषा-सौन्दर्य की वृद्धि के क्षेत्र में अलकारों का प्रयोग भी पर्याप्त सीमा तक सहायक होता है। चन्द ने भी इस साधन से अपने काव्य में सौन्दर्य की अभिवृद्धि की है। किन्तु चन्द्रबरदाई की अलकार-योजना पर विचार करते समय सर्वप्रमुख बात देखने में यही आती है कि उसने अलकारों का प्रयोग भावो के उत्कर्ष के लिए ही किया है पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए नहीं। निम्न पद में कवि ने पद्मावती के रूप-सौन्दर्य का चित्रण किया है और माध्यम अपनाया है उत्प्रेक्षा, सन्देहोपमा और अतिशयोक्ति अलकारों को—

मनहुँ कला ससिभान कला सोलह सो बन्निय।
बाल बेस ससि ता समीप, अम्रित रस पिन्निय॥
बिगसि कमल-स्रिग, भ्रमर, नैनु खंजन म्रिग लुट्टिय।
हीर कीर अरु बिंब मोति नख सिख अहि घुट्टिय॥

× × ×

पद्मिनिय रूप पद्मावतिय मनहुँ काम,कामिनि रचिय।

इसी प्रकार से एक अन्य स्थल पर पृथ्वीराज चौहान ने झपट कर शशि-व्रता का हाथ पकड़ा और कवि ने इस व्यापार की तुलना इस प्रकार से की मानो मदभरे हाथी ने स्वर्णलता को लहरा दिया हो—

चौहान हथ्थ बाला गहिय। सो ओपम कवि चंद कहिय।
मानों कि लता कंचन लहरि। मत्त बीर गजराज गहिय॥

यहाँ पर मदांध गजराज की उपमा से राजा की मनोदशा एवं शक्ति सम्पन्नता का तथा स्वर्णलता की उपमा से रानी शशिवृत्ता के सौन्दर्य तथा पृथ्वीराज जैसे महाबली के हाथ में कोमलांगिनी की स्थिति का कितना सजीव, सुन्दर और स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

इसी प्रकार निम्न पंक्तियों में अलंकार योजना बहुत ही सार्थक और स्वभाविकता की रक्षा में समर्थ हुई है। पृथ्वीराज चौहान की युद्ध के लिए की गई शीघ्रता की तुलना कुशल नट से एवं मन के वेग से तलवार निकालने की गति की उपमा बड़ी ही सुन्दर बन पड़ी है—

उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग्ग मनो बीर नट।
कढ्त तेग मन बेग लगत मनो बीज झट्ट घट॥

महाकवि चन्दबरदाई ने पृथ्वीराज रासो में शास्त्रों के लिए परम्परा-सिद्ध प्राचीन उपमानों का प्रयोग तो कुशलता के साथ किया ही है साथ ही नवीन-नवीन उपमान खोजकर लाने में भी वे किसी से कम नहीं हैं यथा—

भग्गौ मनि फन जस्यौ मनियर। उग्यो सुकदेव किधौं निसि मद्ध॥

यहाँ पर मणिधर श्रीकृष्ण की उपमा सूर्यादि से निकलते हुए सूर्य से दी गई है।

का व्यवहार हुआ है। कहीं कहीं एक ही छद में अनेकों भाषाओं के शब्द प्रयुक्त हुए मिलते हैं।"

परन्तु केवल इस प्रकार की झुंझलाहट और दोषारोपण से ही कार्य नहीं चल सकता अपितु दृष्टव्य तो यह है कि वह कौन सा मूल कारण है जिसके परिणामस्वरूप आज रासो की भाषा में विविधता परिलक्षित हो रही है और उसके स्वरूप निर्धारण में कठिनाई पड रही है। अब हम संक्षेप में इसी तत्व पर विचार करेंगे। अस्तु—

रासो विकसनशील कोटि का महाकाव्य है जिसके कारण प्रत्येक दिशा में अनेकरूपता दृष्टिगत होती है। भाषा के क्षेत्र में तो रासो में दिए गए इस "षट् भाषा पुरानं च कुरानं कथितं मयम" अन्र्तसाक्ष्य के आधार पर यह अनेकरूपता इतनी आडे हाथों आती है कि आज यह एक समस्या उत्पन्न हो गई है कि रासो की भाषा को पचमेल खिचडी कहा जाए अथवा कुछ और।

अनेक प्रभृति विद्वानो ने उपर्युक्त अन्त साक्ष्य के आधार पर रासो में व्रज, मागधी, अमर (संस्कृत) नाग यमन (अरबी) और फारसी भाषाओं का मिश्रण बतलाया है और षट्भाषा के इस अर्थ की पुष्टि भिखारीदास के निम्न दोहे से की है—

व्रज मागधी मिलै अमर नागयमन भखानि।
सहज पारसी हू मिलै षट् विधि करत बखानि॥

परन्तु ध्यातव्य तो यह है कि रासोकार के समय में व्रजभाषा का विकास नहीं हुआ था और न ही उसे इन भाषाओं से परिचय था। इतना ही नहीं यो भी बड़ी मोटी बात है कि कोई काव्य एक निश्चित भाषा में रचा जाता है, उसे विविध भाषाओं का अजायबघर नहीं बनाया जाता। अत उपर्युक्त अन्त साक्ष्य वाले दोहे में रासोकार का संकेत भाषा-वैविध्य की ओर न होकर शैली वैचित्र्य की ओर ही दृष्टिगत होता है।

वस्तुत. रासो सम्बन्धी भाषा विषयक विवाद का प्रारम्भ हुआ डा० बूलर आदि द्वारा प्राइज आदि को रासो सम्बन्धी कार्य से विरक्त किए जाने पर

अर्थात् जब रासो की प्रामाणिकता पर संदेह किया जाने लगा और इसी समय टैसीटरी एवं ग्रियर्सन ने रासो को पश्चिमी हिन्दी अर्थात् पिंगल के नाम से अभिहित किया। यद्यपि यह मत केवल इनके मस्तिष्क की उपज नहीं थी क्योंकि इनसे भी पूर्व १८७३ ई० में मि० ग्राउज ने Asiatic Society Journal में गवेषणात्मक निबन्ध प्रकाशित किया था जिसमें उन्होंने इस तथ्य की प्रस्थापना की थी कि रासो की क्रियाओं, संज्ञाओं, विभक्तियों के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि इसकी भाषा ब्रजभाषा ही है। आगे वे वीर रस के छंदों में प्रयुक्त भाषा के सम्बन्ध में कहते हैं कि उस समय की परम्परा के अनुसार वीर रस के वर्णनों में शब्दों को कठोर बनाने के लिए शब्दों को तोड़ा मरोड़ा जाता था तथा राजस्थानी के समान इसे कृत्रिम डिंगल बना दिया जाता था। यह बात उत्तरकालीन चारणों तथा भूषण, सूदन आदि की रचनाओं में स्पष्ट लक्षित होती है। इसी मत की पुष्टि करते हुए बाद में सर्वश्री श्यामसुन्दरदास, धीरेन्द्र वर्मा और नरोत्तम स्वामी ने भी इस ग्रन्थ को पिंगल भाषा की ही रचना माना। तदुपरान्त राजस्थानी पण्डितों यथा मोतीलाल मनेरिया आदि ने इसे पुरानी राजस्थानी अर्थात् डिंगल के नाम से सुशोभित किया तो डा० दशरथ शर्मा, मनोहर शर्मा आदि ने इसे राजस्थानी पुट से युक्त अपभ्रंश माना। इस प्रकार से डिंगल, पिंगल और अपभ्रंश से प्रभावित राजस्थानी आदि मतों को लेकर साहित्य क्षेत्र में एक वितण्डावाद सा उपस्थित हो गया। अतः रासो की भाषा के सम्बन्ध में इस घटाटोप को दूर करने के लिए पिंगल एवं राजस्थानी पुट से युक्त अपभ्रंश भाषा मानने वाले तर्कों का विश्लेषण कर देना आवश्यक है।

डिंगल के सम्बन्ध में आज अनेक परिभाषाएँ प्रचलित हैं। यदि कोई [illegible] भाषा को डिंगल मानने के पक्ष में है और इस प्रकार के [illegible] अक्षरी वर्णों का आधिक्य होने के कारण इसे डिंगल भाषा का [illegible] है तो कोई डिंगल [illegible] [illegible] [illegible] हुई ओज से [illegible] भाषा को डिंगल [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] [illegible] कुछ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

होता है। यह सुललित एवं मधुर पदावली रासो में आद्योपांत प्रयुक्त हुई है उदाहरणत: कुछ चित्र देखिए—

> सम वनिता वर वदि, चंद जंपिय कोमल कल।
> सबद ब्रह्म इहि सत्त, अपर पावन कहि निर्मल॥

अथवा—

> फुलि कित्ति चहुआण की जुग्गनि जुग्ग निवास।

अथवा—

> पय सक्करी सुभत्तौ। एकत्तौ कनय राय भोयंसी॥
> कर कंती गुज्जरियं। रब्बरियं नैव जीवंति॥

अथवा—

> मनहु काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रासि।
> पसु पछी सब मोहिनी, सुर नर मुनिवर पास॥

इतना ही नहीं कितने ही छंदों में संस्कृत के छंद, तत्सम शब्दों का प्रयोग और ब्रजभाषा का प्रवाह लक्षित होता है। शार्दूलविक्रीडित छंद में इन्हीं विशेषताओं से युक्त एक चित्र देखिए—

> मुक्ताहार विहार सार सुबुधा,
> अब्धा बुधा गोपिनी।
> सेत चीर सरीर नीर गहिरा,
> गौरी गिरा जोगिनी॥
> वीना पानि सुवानि जानि दधिजा,
> हंसा रसा आसिनी॥
> लंबोजा चिहुरार भार जघना,
> विघ्ना घना नासिनी॥

परन्तु यह पिंगल भाषा आधुनिक पिंगल न होकर उस पुरानी पिंगल की द्योतक है जो साहित्य क्षेत्र में १२वीं शताब्दी से लेकर १६वीं शताब्दी तक

प्रचलित रही और जिसे पुरानी हिन्दी के नाम से अभिहित किया जा सकता है। इतना ही नहीं रासोकार द्वारा दिए गए षट् भाषा से तात्पर्य है उस समय में प्रचलित अपभ्रंश मूलक शब्द प्रवृति, संस्कृत के अनुस्वारों और शुद्ध तत्सम शब्दों के ग्रहण ,पैशाची प्रवृति, पाली एवं महाराष्ट्री की प्रवृति और शौरसेनी की प्रवृतियों से और निश्चय ही चंद ने अपनी रचना में इन सभी पद्धतियों का समाहार किया है। अपभ्रंश मूलक प्रवृति के अन्तर्गत कार्य से कज्ज, ग्राम से ग्रम्प हो जाया करता है और रासो में भी यह प्रयोग परिलक्षित होता है।

संस्कृत के शुद्ध तत्सम शब्दों एवं अनुस्वारों का प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में परिलक्षित होता है यथा—

हनित निनायका सेना, कथित न च पूर्व यम्
अयुद्ध चप्रत एपा जिना स्वामि रणे युधम।

इसके अतिरिक्त अर्द्धमागधी की प्रवृति भी परिलक्षित होती है। इसके अन्तर्गत दो स्वरों के बीच में जहाँ ग आता है उसे लुप्त कर या कहीं कहीं क या य में परिवर्तित कर देते हैं। रासोकार ने भी ऐसा ही किया है यथा सागर से सायर। पैशाची प्रवृत्ति में ड के स्थान पर ल का प्रयोग हुआ करता है। और रासोकार भी प्रमाण का प्रमान कर देता है। शौरसेनी के अन्तर्गत लिंग सम्बन्धी प्रवृतियाँ पाई जाती हैं। रासो में भी इन सबका प्रयोग हुआ है।

इस प्रकार यदि समग्र भाव से अवलोकन किया जाए तो हम कह सकते हैं कि रासोकार ने जिन ६ शैलियों का संकेत किया है वे इसमें प्रयुक्त हैं।

रासो की भाषा की कुछ अपनी विशेषताएँ भी हैं यथा रासो में छंदानुरोध से मात्रान्तर्गत कहीं कहीं लघु व्यंजन को गुरु कर दिया गया है यथा—धनी मत्त मत्त उभौ पद भानं।

शब्दों में अनुस्वार प्रयोग सर्वत्र स्वर देने के लिए नहीं किया गया है अपितु किया गया है छंद पूर्ति के लिए। सूरदास ने इस प्रकार का प्रयोग किया था यथा—

प्रकार वह अपनी ही बंधनहीनता में अपना प्रवाह खो बैठती है—उसी प्रकार छंद भी अपने नियंत्रण से राग को स्पंदन, कंपन तथा वेग प्रदान कर निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल सजल कलस भर कर उन्हें सजीव बना देते हैं। वाणी की अनियंत्रित सांसें यंत्रित हो तालयुक्त हो जाती हैं, उनके स्वरों में प्राणायाम, रोओं में स्फूर्ति आ जाती है, राग की असम्बद्ध झंकारें एक वृत्त में बंध जाती हैं, उनमे परिपूर्णता आ जाती है।" तो प्रसिद्ध पाश्चात्य समालोचक होरेस अपनी, पुस्तक 'आर्ट ओफ पोइट्री' में लिखते हैं—

Metres appropriate to epic, elegiac satiric and other poetry have been settled once for all and must not be changed, a comic matter refuses to be set forth in tragic verse and contrastwise even tragic heroes in poverty and exile cost aside their yard long verbiage and their swelling pride of language, if they wish to touch the spectators.

और वस्तुत इस प्रकार के विचार ठीक भी हैं क्योंकि मात्रा वर्ण, यति, लय आदि के संगठन से युक्त एक विशेष छंद एक विशेष अनुभूति को उकसाने, एक विशेष भाव को समझाने तथा एक विशेष रस की अभिव्यञ्जना कराने में सहायक सिद्ध हो सकता है। कविर चन्द्रवरदाई इन सभी बातो से अनभिज्ञ न थे, वे छंद की महत्ता भलीभांति समझते थे। फलत उनके काव्य में हमे विचित्र प्रकार के मात्रिक, वर्णिक छंद दृष्टिगत होते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि आदि काव्य होने के कारण उनके काव्य मे बहुत से ऐसे छंद भी मिलते हैं जो या तो अप्रचलित हैं या छंद शास्त्र में उनका उल्लेख अन्य प्रकार से मिलता है।

रासो के प्रणेता ने आदि पर्व में साटक, भुजंगप्रयात, दूहा, कवित्त, गाहा, अरिल्ल, पद्धरी, मोतीयदाम, चालि, करषा विषष्वरी आदि बारह-तेरह प्रकार के छंदो का प्रयोग बड़ी सावधानी के साथ किया है। उसने कहीं भी ऐसा स्थल नहीं आने दिया है जहाँ पर काव्य की आत्मा को आघात पहुँचे। वस्तुत

छंदों के प्रयोग में णमोकार की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि वे भावों के साथ पूर्णतः मेल खाते हुए चलते हैं, भावों के उत्कर्ष में साधक ही सिद्ध होते हैं, बाधक नहीं।

अलंकार प्रियता मानव-जाति के लिए एक स्वाभाविक-सी वस्तु है। यह अलंकारिता का प्रेम मानव-जाति के रक्त में मिला हुआ है। इसके मूल में आत्म दर्शन की सहज प्रवृत्ति है। इसके साथ और भी छोटी छोटी कई प्रवृत्तियाँ जैसे व्यवस्था, प्रियता, एकत्व, प्रेम भी मिली जुली रहती हैं। यह प्रकृति मानव की समाज-प्रियता का फल है। भाषा का उदय भी इसी प्रवृत्ति से हुआ है। हमारी भाषा के अलंकारों का इन्हीं प्रवृत्तियों से सम्बन्ध है। साहित्य के सृजन में जो आनन्द और उत्साह प्रेरक होता है वही अलंकारों का भी मूल स्रोत है। हृदयगत भावों को व्यक्त करने के लिए जब भाषा कम-जोर पड़ जाती है तो मानव स्वतः अलंकारों को अपनाता है। कवि इस स्थिति में प्रस्तुत-अप्रस्तुत का आरोप करके कविता को उत्कर्ष पर पहुँचाता है। कवि की कल्पनाएं उन्मुक्त पक्षी की भाँति गगन में विचरण करने लगती हैं। अलौकिक तथा अनुपम सौन्दर्य को बटोर कर कवि काव्य जगत में सुगन्धित पुष्प-पराग को बिखेरता है। इसलिए काव्य जगत में अलंकारों की उतनी ही आवश्यकता है जितनी शरीर को सुन्दर, गठा हुआ और अनुपम बनाने में आभूषणों की आवश्यकता है। प्राचीन काल में अलंकारों का प्राधान्य माना जाता रहा है क्योंकि 'अलंकारा एव काव्ये प्रधानमिति प्राच्यानां मतम्।' ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने काव्य में अलंकारों को शरीर के बाह्य आभूषण न मान कर केवल सौन्दर्य ही माना है। 'सौन्दर्यमलंकारः' इस प्रकार वामनाचार्य ने वृत्ति में लिखा है। कई व्यक्तियों ने अलंकारों को काव्य में उसी प्रकार नितान्त आवश्यक माना है जिस प्रकार अग्नि की उपस्थिति में उष्णता और दाहकता की स्थिति आवश्यक और अनिवार्य होती मानी जाती है। शब्द से शब्द को ठीक प्रकार से समझने वाले अलंकारों को शब्दादिक ही समझते हैं। हम यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार आभरणों आदि के न रहने से मनुष्य के शरीर की स्थिति ठीक रहती है उसी प्रकार शब्द के यथार्थ अर्थ को समझने के

लिए अलकारो के बिना काम चल सकता है। अत अलकारो की योजना आवश्यक नही होती। यथा-अवसर उनका प्रयोग होता रहता है और होना भी चाहिए।

अलकार भावों को व्यक्त करने की एक शैली है। जो लोग अलकारो का विरोध करते हैं और अलकारो का प्रयोग करने वालो को खरी-खोटी सुनाते हैं वे लोग स्वय अपनी कविता में अलकारो का प्रयोग कर जाते हैं। वास्तव में कवि के पास अपने विषय को हृदयगम कराने के लिए अलकारो के सिवाय दूसरा कोई उपाय नही। वे अप्रस्तुतो की योजना के द्वारा पाठक को समझाने का प्रयत्न करते हैं।

कवि काव्य मे अलकारो का प्रयोग दो रूपो मे करता है। एक स्वतन्त्र रूप में दूसरा सहायक रूप में। स्वतन्त्र रूप मे प्रयोग सर्वथा चमत्कार को ही पैदा करता है। सहायक रूप में अलकारो का प्रयोग मूल विषय को हृदयगम कराने के लिए ही होता है। चन्द्रबरदाई सहृदय कवि थे और कहने की आवश्यकता नही कि इसीलिए उन्होने अपने काव्य में द्वितीय रूप की ही प्रधानता रखी है। उनके आदि पर्व में भी हमें यही बात देखने को मिलती है। आगामी सदर्भ में अपने इसी मत की पुष्टि के लिए हम कुछ उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि चन्द्रबरदाई ने अपने काव्य मे अलकारो का प्रयोग सहज स्वाभाविक रूप में ही किया है। फलत उनके यहा अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, उदाहरण, दृष्टात आदि का ही प्रयोग प्रचुर मात्रा मे किया गया है। इन्ही और इसी प्रकार के अलकारो मे कवि को अधिक प्रेम है। इसका सबसे बडा उदाहरण यह है कि कवि ने अपने काव्य के 'आदि पर्व' तक मे इन्ही अलकारो का प्रयोग किया है, प्रमाण के लिए कुछ चित्र देखिए—

अनुप्रास—

मुक्ताहार विहार सार सुबुधा, अब्धा, बुधा गोपिनी
सेतं चीर शरीर नीर गहिरा, गौरी गिरा जोगिनी॥

रूपक—

काव्य समुद्र कवि चंद कृत, मुगति समप्पन ग्यान।
राजनीति बोहिथ सुफल, पार उतारन यान॥

उत्प्रेक्षा—

पाघ विराजत सीस पर, जरकस जोति निहाय।
मनौं मेर के सिषर पर, रह्यौ अहप्पति आय॥

अतिशयोक्ति—

ज दिन जनम प्रिथिराज। परिग घत्तह कनवज्जह।
ज दिन जनम प्रिथिराज। त दिन गज्जन पुर भज्जह॥
ज दिन जनम प्रिथिराज। त दिन पट्टन वै सल्लिय॥
ज दिन जनम प्रिथिराज। त दिन मन कालन पल्लिय॥
ज दिन जनम प्रिथिराज। त दिन भार धर उत्तरिय॥
धनरीत्र ध्रम अमन ब्रह्म। रही जुगे जुग धनरीय॥

समग्रत कहा जा सकता है कि चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो के आदि पर्व का महत्त्व किसी भी अन्य पर्व या समय से कम नहीं है।

प्रश्न ११—'पद्मावती-समय' की संक्षिप्त कथा देते हुए काव्य-कला के विभिन्न उपकरणों की दृष्टि से उसकी समीक्षा कीजिए।

हिन्दी साहित्य के आदि महाकाव्य पृथ्वीराज रासो में 'पद्मावती-समय' आख्यान का विशिष्ट स्थान है। इसमें कवि ने राजकुमारी पद्मावती के जन्म से लेकर उसके विवाह तक की घटनाओं का अति सुन्दर वर्णन किया है।

पद्मावती पूर्व दिशा में समुद्र शिखर नामक दुर्ग के यादव राजा विजय की अत्यन्त सुन्दर पुत्री थी। एक दिन जब वह अपनी सखियों के साथ उद्यान में घूम रही थी तब उसने एक सुन्दर तोते को पकड़ लिया और तोते को पिंजरे में बन्द कर लिया। उस तोते ने दिल्लीपति पृथ्वीराज के रूप गुणों की [illegible] पद्मावती मन से पृथ्वीराज पर अनुरक्त हो गई।

उट्ठि राज प्रथिराज, बाग लग मनों वीर नट।
कढ़त तेग मन वेग, लगत मनों बीज झट्ट घट॥

कवि ने युद्ध-स्थल के दृश्यो का अकन करते समय दृश्य-सा अकित करने के कौशल का भी परिचय दिया है यथा—

गही तेग चहुँवान हिन्दुवान रानं। गज जूथ परिकोप केहरी समानं॥
करे रुंड मुंड करी कुभ फारे। वरं सूर सामंत फकि गर्ज भारे॥
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे। मद तजिय लाज ऊमंग मग्गे॥
दौरि गज अंध चहुँवान केरो। घेरीय गिरद्द चिहों चम्क फेरो॥
गिरद्दं उड़ी भांन अंधार रैनं। गई सूधि सुज्झै नहीं मज्झि नैनं॥

वीर और शृङ्गार रसो के अतिरिक्त कवि ने रौद्र, भयानक और बीभत्स रसो की योजना भी अपने इस छोटे से प्रकरण में की है किन्तु वास्तविकता तो यही है कि इस प्रकरण का अगीरस वीर नवंश शृङ्गार को अपने साथ समेटे हुए है और यह स्वाभाविक भी है, क्योकि योद्धा अथवा वीर स्वभावतः ही सौन्दर्य प्रेमी होता है और रासो में वीर हृदय की भावनाओ को ही चित्रित किया गया है। लेकिन रासो की शृङ्गार-भावना वैयक्तिक कुण्ठाओ और मानसिक ग्रथियों वाली विकृत शृगारिकता नहीं है वरन् स्वस्थ, स्वाभिमानी, अल्हड तथा कर्मठ वीर के हृदय मे हिलोरें मारने वाली शृगारिकता है।

प्रकृति चित्रण—चद्रवरदाई ने अपने महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' में प्रकृति का सुन्दर, सजीव और स्वाभाविक वर्णन किया है। यद्यपि इस कथन में भी कोई अनुचित नही है कि प्रकृति का उतना विस्तृत और सजीव वर्णन उनके काव्य में नही हुआ है जितना उनके पूर्ववर्ती संस्कृत कवियो ने अपने काव्य में किया था किंतु इसका भी एक कारण है और वह यह कि चद्रवरदाई वीरगाथा काव्य के प्रणेता हैं जिनका मूल लक्ष्य साहस, वीरता और शौर्य का प्रदर्शन करना रहा है। फलत प्रकृति-दर्शन के लिए उनके काव्य में बहुत ही कम स्थान रहा है किंतु इतना होते हुए भी रासोकार ने प्रकृति के लिए अपने काव्य में स्थान निकाल ही लिया है।

पद्मावती-समय' में प्रकृति-चित्रण के विभिन्न रूपों—आलम्बन, उद्दीपन, अलंकरण आदि में अलंकरण और उद्दीपन रूपों का ही प्राधान्य है, आलंबन रूप का तो इस प्रकरण में अभाव ही है। लेकिन अन्य रूपों—उद्दीपन और अलंकरण—में कवि ने स्वाभाविकता का पूरा ध्यान रखा है। इसका सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण हमें पद्मावती के रूप सौन्दर्य के वर्णन में देखने को मिलता है। उसने सर्वांग रूप चित्रण करने में प्रकृति के चिर-परिचित उपमानों—कमल, भ्रमर, खंजन, हंस, मृग, बिम्ब आदि को ही अपनाया है यथा—

मनहु कला ससिभान कला सोलह सो बन्निय,
बाल बेस ससि ता समीप अम्रित रस पिन्निय।
बिगसि कमल स्रिग भ्रमर नैन खंजन मृग लुट्टिय,
हीर कीर अरु बिंब मोति नष सिष अहि घुट्टिय।
छत्रपति गयंद हरि हंस गति बिह बनाय संच सचिय;
पदमिनिय रूप पद्मावतिय मनहु काम कामिनि रचिय।

किन्तु केशव आदि कवियों के समान कहीं भी अस्वाभाविकता नहीं आने दी है।

कोई स्थान नही है कि रासोकार का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। वीर रस के वर्णन में वह ऐसी भाषा का प्रयोग करता है जिसे पढ़ते ही हृदय ओजमय हो जाता है। इसी प्रकार शृगार के वर्णन में भी उसकी भाषा ऐसी कोमलता और मधुर ध्वनि-व्यजक शब्दावली से युक्त हो गई है कि हृदय में माधुर्य और सरसता का सचार स्वत होने लगता है। भाषा की रसानुगुणता के साथ-साथ उसमे सगीतात्मकता का गुण भी ऐसा मिलता है कि हृदय बरबस उस ओर आकृष्ट हो जाता है।

छद योजना—पद्मावती-समय में कवि ने दोहा, कवित्त (छप्पय), गाथा, पद्धरि तथा भुजग-प्रयात छदो का प्रयोग किया है। प्राय उन्होने दोहे के अन्तिम चरण का कवित्त के प्रथम चरण के रूप में पुर्नस्थापन किया है यथा—दूहा—

आनो तुम्ह चहुवांन वर अरु कहि इहै सँदेस;
साँस सरीरहि जो रहे प्रिय प्रथिराज नरेश॥

कवित्त—

प्रिय प्रिथिराज नरेश जोग लिषि कग्गर दिन्नौ;
लगुन वरग रचि सरब दिन द्वादस ससि लिन्नौ।

यद्यपि कही-कहीं इसके अपवाद भी दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु वे अपने आप में अत्यत नगण्य हैं।

वस्तुत कवि ने छदो के प्रयोग में भी स्वाभाविकता का पूरा ध्यान रक्खा है और यह स्वाभाविकता दूहा और छप्पय में आकर ही अधिक बलवती हुई है। सम्भवत इसीलिए तो डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक 'सक्षिप्त पृथ्वीराज रासो' की भूमिका में लिखते हैं—"वैसे तो हर तलवार की टकार में चन्दवरदाई तोटक, तोमर, पद्धरी और नाराच पर उतर आते हैं पर जमकर ये छप्पय और दूहा ही लिखते हैं।"

अलकार योजना—'पद्मावती-समय' में अलकारो का प्रयोग भी कवि ने सहज और स्वाभाविक रूप में किया है। कही भी ऐसा अवसर नहीं आने दिया

है जहाँ अलंकारों के घटाटोप में भावधारा एकदम विलुप्त हो जाए। उसने तो उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अतिशयोक्ति, वीप्सा और अनुप्रास जैसे उन अलंकारों को चुना है जो बिना किसी प्रयास के स्वतः ही समाविष्ट हो जाते हैं और काव्य-शोभा की वृद्धि में सहयोग देते हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित छंद में उपमा का सहज-स्वाभाविक और सुन्दर प्रयोग देखिए—

उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग मनो वीर नट।
कढ़त तेग मन वेग लगत मनों बीज झट्ट घट॥

समग्रतः कहा जा सकता है कि 'पद्मावती-समय' में भावधारा और काव्य शिल्प का अत्यन्त समन्वित और सुनियोजित रूप दृष्टिगत होता है।

प्रश्न १२—'पृथ्वीराज रासो में वीर भावों की अत्यन्त सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है और यहाँ-वहाँ कोमल कल्पनाओं और मनोहारिणी उक्तियों से इसमें अपूर्व चमत्कार आ गया है।' उपयुक्त उद्धरण देते हुए इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उन्होने पृथ्वीराज के साथ कंधे से कंधा भिड़ा कर शत्रु का सामना भी किया था। फलत उनके युद्ध वर्णन अपने पूर्ववर्ती और परवर्ती कवियो की अपेक्षा अधिक सुन्दर बन पड़े हैं। उनके यहाँ सस्कृत कवियो के युद्ध वर्णनो के समान केवल बाहरी सैन्य वैभव, राजसी ठाट-बाट, हाथियो की चिंघाड, घोडो की हिनहिनाहट, शस्त्रो की गुंजार और युद्ध की भीषणता का ऊपरी वर्णन ही नही है अपितु युद्ध स्थल मे योद्धा के युद्ध-समय की मनोदशा के चित्रण तथा मानसिक सघर्ष के भी सुन्दर चित्र मिलते हैं। और वस्तुत यही कारण है कि ये चित्र पाठक को एक दम अपनी ओर खीच लेते हैं। यवन-सेना का एक सश्लिष्ट चित्र देखिए—

खुरासान मुलतान खंधार मीर । बलक्क सो बल तेग अच्चूक तीरं ॥
रुहंगी फिरंगी हलब्बी समानी । ठठी ठट्ट बल्लोच ढाल निसानी ॥
मजारी चखी मुक्ख जबक लारी । हजारी हजारी हुकै जोध भारी ॥
तिन पष्परं पीठ हय जीन साल । फिरंगी कती पास सुकलात लाल ॥
तहाँ बाघ बाघं मरूरी रिहारी । घन सार समूह अरु चौंर झारी ॥
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी । तुरक्की महाबान कम्मान बाजी ॥

स्थिर दृश्यो के चित्र अकित करने के अतिरिक्त चन्द ने मुद्रा-चित्रण में भी अपने काव्य-कौशल का पर्याप्त परिचय दिया है। इस प्रकार के वर्णनो को पढकर ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द मुद्रा विशेष के सूक्ष्मातिसूक्ष्म हाव-भाव को पहचानने और उसका शब्द चित्र प्रस्तुत करने मे सिद्धहस्त थे। एक उदाहरण से यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी। राजा पृथ्वीराज यवन-आक्रमण की सूचना मिलते ही तुरन्त सामना करने के लिए तैयार हो गए। जिस वेग तथा स्फूर्ति के साथ वह तैयार हुए उसका वर्णन चन्द ने इस प्रकार किया है—

उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग मनो वीर नट ।
कढत तेग मन वेग, लगत मनो बीज झट्ट घट ॥

युद्ध स्थलो के वर्णन मे भी चन्द ने ऐसी सूक्ष्म निरीक्षण तथा दृश्य को अकित करने के कौशल का परिचय दिया है—

कहीं कमध कहीं मथ कहीं कर चरन अंतरुरि।
कहीं कंध वहि तेग कहीं सिर जुट्टि फुट्टि उर॥
कहीं दंत मंत हय खुरपु परि कुम्भ भ्रसुन्डह रुन्ड सब।
हिंदवान रान भय भानमुख गहिय तेग चहुँवान जब॥

अपने नायक की युद्ध वीरता का वर्णन करते समय भी चन्द ने इसी सूक्ष्म निरीक्षणता से काम लिया है। देखने की बात तो यह है कि इन युद्ध-वीरता के वर्णन में केवल अत्युक्तियों अथवा अतिशयोक्तियों के बल पर पाठक का क्षणिक मनोरंजन करने का प्रयास नहीं किया गया है अपितु प्रत्यक्षानुभव के आधार पर रणभूमि में रण-कौशल दिखाते हुए योद्धा की विभिन्न मुद्राओं और रणस्थली के विभिन्न दृश्यों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया गया है—

गही तेग चौहान हिंदुवान रानं। गजं जूथ परि कोप केहरी समानं॥
करे रुंड मुंडं करी कुंभ फारं। वर सूर सामंत हुकि गर्ज भारं॥
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गं। मदं तज्जियं लाज ऊमग्ग मग्गं॥
दौरि गज अंध चहुवान केरो। घेरीय गिरद्द चिहुँ चक्क फेरो॥
गिरदं उड़ी भान अंधार रैनं। गई सूधि सुज्झै नहीं मज्झि नैनं॥

रणस्थली का ऐसा यथार्थ चित्रण प्रत्यक्षानुभूति के आधार पर ही हो सकता है। [illegible] के ग्रन्थों में बड़े बड़े रणों के [illegible] कल्पना विलास के द्वारा सेनाओं की सज्ज-धज का अतिरंजित वर्णन तो किया जा सकता है किन्तु युद्धभूमि में योद्धा किस प्रकार अपनी जान हथेली पर रखकर अपनी मातृभूमि में निज प्राणविसर्जन देता है, इसका सच्चा चित्रण वही कवि कर सकता है जिसने स्वयं कभी तलवार हाथ में लेकर शत्रु का सामना किया हो। यही कारण है कि जो कवि युद्धभूमि में स्वयं शत्रु का डट कर सामना करते हैं उनके युद्ध वर्णनों में कल्पना-विलास और शाब्दिक चित्रण का प्राय अभाव-सा रहता है और जो केवल कल्पना के बल पर युद्ध-चित्रण किया करते हैं वे प्रायः हथियारों, विभिन्न प्रकार के घोड़ों तथा हाथियों में [illegible] गिनाते ही रह जाते हैं। इसी तथ्य की पुष्टि के हेतु [illegible] मनोरंजक

लिखते हैं—"रासो की विशेषता यही है कि उसमें वीर हृदय के उच्छ्वास सगृहीत हैं, कल्पना-विलास नहीं। शायद इसी विशेषता से प्रभावित होकर कवीन्द्र रवीन्द्र ने कहा था—भक्तिरस का काव्य तो भारतवर्ष के प्रत्येक साहित्य मे किसी न किसी कोटि का पाया जाता है। राधा-कृष्ण को लेकर हर एक प्रान्त ने निम्न या उच्चकोटि का साहित्य पैदा किया है लेकिन राजस्थान ने अपने रक्त से जो साहित्य निर्माण किया है उसकी जोड का साहित्य और कहीं नहीं मिलता।"

रासो में वीरभावना का मूल्याकन करते समय एक ध्यातव्य बात यह है कि वह सर्वत्र शृङ्गार को अपने साथ समेटे हुए है। वस्तुत योद्धा अथवा वीर स्वभावत सौन्दर्य प्रेमी होता है और रासो मे वीर-भावनाओ के चित्रण के कारण शृङ्गार-भावना का चित्रण होना भी स्वाभाविक ही है। पर रासो मे चित्रित शृङ्गार-भावना की विशेषता यह है कि वह वैयक्तिक कुण्ठाओ और मानसिक ग्रन्थियो वाली विकृत शृङ्गारिकता नही है वरन् स्वस्थ, स्वाभिमानी, अल्हड तथा कर्मठ वीर के हृदय में हिलोरें मारने वाली शृङ्गारिकता है। जिस प्रकार चन्द ने वीर हृदय की अछूती वीर भावनाओं को बिना किसी हेर-फेर के उनके यथार्थ रूप में ही चित्रित किया है उसी प्रकार मधुर भावनाओं को भी निस्सकोच रूप से उनके नैसर्गिक रूप में ही व्यक्त किया है। इस प्रकार उनके शृङ्गार-वर्णन में जहाँ एक ओर भावनाओ की नैसर्गिकता है वहाँ दूसरी ओर एक अनूठी स्पष्टवादिता भी है। कही पर किसी भी प्रकार की विकृति या कृत्रिमता के दर्शन नही होते। भाव और अभिव्यक्ति सम्बन्धी इस नैसर्गिकता तथा स्पष्टवादिता के अतिरिक्त रासो के शृङ्गार-वर्णन की एक अन्य विशेषता यह है कि लेखक का ध्यान केवल पात्र के शारीरिक सौन्दर्य के चित्रण की ओर ही अधिक नहीं रहा है अपितु मनोदशा का वर्णन भी उसने अत्यन्त मनोयोग पूर्वक किया है। आदि काव्य में इस प्रकार मानसिक सघर्ष का चित्रण मिलना एक निजी महत्त्व रखता है। कवि ने मानसिक सघर्ष के चित्रण में व्यर्थ की खीचा-तानी भी कहीं नही की है अपितु गिने-चुने शब्दो के द्वारा ही पूरे का पूरा चित्र प्रस्तुत कर दिया है। कवि इस प्रकार के चित्रण

में कितना सिद्धहस्त है इसका परिचय दो तीन उदाहरणों से मिल जाएगा। महाराज पृथ्वीराज के आगमन की सूचना प्राप्त होते ही सामन्त लोग अभिवादनार्थ घोड़ों पर चढ़ चढ़ कर चलने के लिए तैयार हो रहे हैं। पद्मिनी की उस समय मानसिक अवस्था कैसी है, वह कितनी आतुर है, किस प्रकार प्रतिपल गवाक्षों में झाँकती है, इसका चित्रण चन्द ने इस प्रकार किया है—

अगिवानिय अगिवान कुँअर चनि चनि हम सज्जनि ।
दिष्पन को त्रिय सवनि चढ़ि गौरव छाजन रज्जनि ॥
विलसति अवास कुँअरि बदन मनो राहु छाया सुरन ।
झपति गवष्षि पल-पल पलकि दिष्षत पथ दिल्ली नृपन ॥

इसी प्रकार का एक और चित्र देखिए। पृथ्वीराज के आगमन के उपरान्त पद्मिनी एवं [illegible] के अनुसार शिवालय में पूजन के लिए जाती है। महाराज पृथ्वीराज वहाँ पहुँचने से ही विद्यमान हैं। गौरी-पूजन के उपरान्त पद्मिनी जैसे ही मुड़ कर देखती है तो पृथ्वीराज को देखते ही किस प्रकार लज्जा, मोह तथा उत्कण्ठा आदि भावों से मन [illegible] उद्वेलित हो उठती है, इसका चित्रण चन्द ने गिने-चुने शब्दों में इस प्रकार कर दिया है—

फिर देखि देखि प्रथिराज राज ।
हँस मुद्ध मुद्ध कर पट्ट लाज ॥

इस सूत्र में कितनी स्वाभाविकता और मनोरमता है, यह तो [illegible] ही। इसमें [illegible] ही देखने योग्य बात तो यह है कि कवि ने [illegible] की [illegible] और भावों की [illegible] का भी अद्भुत परिचय दिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रासो में विविध [illegible] भावना और उनके [illegible] स्वाभाविक रूप से आने वाली [illegible] [illegible] में स्पष्ट है। [illegible]

और मातृ-भूमि के लिए अपने प्राण हँसते हुए दे दिए। इसमें तो सती चिताओ की लपटो और वीर-योद्धाओ के रक्त की लालिमा की गौरवगाथा सतियों और योद्धाओ के आत्म-बलिदान के साथ अमर है। और इन सभी विशेषताओ के कारण हम कह सकते हैं कि वीर और मधुर भावो का ऐसा सुन्दर, स्वाभाविक तथा मर्मस्पर्शी चित्रण और समन्वय अन्यत्र मिलना कठिन है।

प्रश्न १३—निम्नलिखित पर टिप्पणियाँ लिखिए—

(क) रासो के विभिन्न रूपांतर (ख) भट्टायत संवत् और अनद सवत् (ग) चंद तथा भूषण का वीर काव्य (घ) रासो काव्यों की विशेषताएँ।

(क) रासो के विभिन्न रूपांतर—हिन्दी साहित्य के इतिहास में जितना विवाद-ग्रस्त विषय पृथ्वीराज रासो का रहा है, उतना कोई अन्य नही। फलत. इस दिशा में अनुसधाताओ ने अपने अथक परिश्रम के द्वारा अनेक महत्वपूर्ण तथ्य प्रदान किए हैं जिनमें 'रासो के विभिन्न रूपातर' उल्लेखनीय हैं। ये विभिन्न रूपातर इस प्रकार हैं—

१. वृहत रूपातर—इसकी प्रतियाँ उदयपुर मे हैं। नागरी प्रचारणी सभा द्वारा प्रकाशित सस्करण भी इसी रूपातर का है। इसमें कथा प्रसग और वर्णन विस्तार सबसे अधिक है। इसकी उपलब्ध सबसे प्राचीन प्रति सवत् १७६० की है। श्री प० मोतीलाल जी मनेरिया इसी प्रति को सबसे प्राचीन मानते हैं।

२. मध्यम रूपातर—अबोहर और पजाब विश्वविद्यालय के ओरियंटल पुस्तकालय मे सुरक्षित प्रतियाँ मध्यम रूपातर की हैं। लोहन के श्री महा-महोपाध्याय प० मथुरा प्रसाद जी दीक्षित ने इसके कुछ अश का सम्यक सपादन व भाष्य कर प्रकाशित भी कराया। आपके कथनानुसार इसमें सात हजार पाठ (आर्या छद के हिसाब से) हैं। इसकी प्राचीनतम प्रति के लिए कहा जाता है कि यह सवत् १६७३ की लिखी हुई है।

३. लघुरूपातर—इसकी प्रतिलिपियाँ बीकानेर के अनूप सस्कृत विद्यालय में हैं। श्री नरोत्तम स्वामी आदि विद्वानों ने इसकी पर्याप्त चर्चा की है।

४ लघुतम रूपांतर—इसकी केवल एक प्रति गुजरात के धारणोज गाँव में श्री मुनिजिनविजय जी सूरी को प्राप्त हुई।

हस्तलिखित प्रतियों के विवरण से पता चला है कि लघुतम रूपांतर की दो, लघु रूपांतर की पाँच, मध्यम रूपांतर की ग्यारह तथा बृहद् रूपांतर की तैंतिस प्रतियाँ उपलब्ध हैं। प्राप्य समाचारों के अनुसार श्री नानूराम भट्ट और मुनि कान्तिसागर के पास भी रासो की प्रतियाँ हैं किन्तु ये प्रतियाँ किसी ने देखी नहीं हैं। अतः यह कहना कठिन है कि ये किस रूपांतर की हैं।

इन हस्तलिखित प्रतियों को चार रूपान्तरों में विभाजित करने का भी एक मूल कारण है और वह यह कि सभी प्रतियों के तुलनात्मक अध्ययन से कुछ ऐसे सामान्य प्रसंग मिलते हैं जो सभी प्रतियों में लिपिबद्ध हैं और इस प्रकार से एक अंश का बोध पड़ता है। लघुतम रूपांतर के प्रायः सभी छंद तथा कथा-प्रसंग थोड़े हेर फेर के साथ लघुरूपांतर में मिल जाते हैं और इसी प्रकार से लघु के मध्यम में तथा मध्यम के बृहद् में। परिमाण और विस्तार की दृष्टि से बृहद् रूपांतर मध्यम का तिगुना है, मध्यम रूपांतर लघु का तिगुना है और लघु लघुतम का तिगुना प्रतीत होता है। बीकानेर के [illegible] का विचार है कि मूल रासो लघुतम रूपांतर है और इसी में समय समय प्रक्षेप होता गया किन्तु उदयपुर के [illegible] मोहनसिंह आदि की धारणा और विपरीत है। ये बृहद् रूपांतर को तो मूल रासो मानते हैं किन्तु शेष रूपांतरों को उसका संक्षेप मानते हैं।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा से पृथ्वीराज रासो का जो संस्करण प्रकाशित हुआ है वह बृहद् रूपांतर की प्रतियों पर ही आधृत है और रासो के [illegible] ऐतिहासिक आलोचनाओं से जितना भी सिद्ध हुआ है वह भी बृहद् रूपांतर के ही अनुरूप है। नागरी प्रचारिणी सभा ने अपनी [illegible] प्रति का लिपिकाल सं० १६४० या १६४२ बताया है परन्तु [illegible] से अनुमान किया जाता है कि इसे सन् से १६४० या ४२ तक लिखा गया। [illegible] के अनुसार तो सं० १७६० होना चाहिए किन्तु [illegible]

उस प्रति को १८७७ की बतलाते हैं। डा० नामवर सिंह के अनुसार वे संख्याएँ १७६७ प्रतीत होती हैं। उदयपुर में इस वृहद् रूपांतर की प्रामाणिक प्रति महाराणा अमरसिंह द्वितीय के पास है जिसमें लिपि-काल माघ कृष्ण ६ सोमवार सं० १७६० वि० है।

रासो के लघुतम रूपांतर की जो पूर्ण प्रति प्राप्त हुई है उसका लिपिकाल सं० १६६७ वि० है। इसकी पुष्पिका में दिन का उल्लेख नहीं है। यदि यह प्रति प्रामाणिक है तो निश्चय ही पृथ्वीराज रासो की प्राप्त प्रतियों में सबसे पुरानी है। डा० नामवर सिंह का कथन है कि बीकानेर से श्री नरोत्तमदास जी स्वामी इसका संपादन करके शीघ्र ही प्रकाशित करवाने जा रहे हैं।

(ख) भटायत और अनन्द संवत्—कर्नल टॉड, कविराज श्यामलदास, मुरारीदीन आदि विद्वानों के द्वारा जब रासो सम्बन्धी इस मत—रासो में दी गई घटनाएँ सही नहीं हैं तथा संवत् आदि भी अशुद्ध हैं—की स्थापना की गई तब पं० मोहनलाल विष्णु लाल पाण्ड्या ने रासो को प्रामाणिक मानने के हेतु भटायत संवत् की कल्पना कर ली। उन्होंने अपनी इस कल्पना का आधार यह बताया कि प्राचीन समय में दो संवत् प्रचलित थे। एक पक्ष वाले तो विक्रम के जन्म से संवत् का आरम्भ मानते थे जबकि भाट, चारण आदि विक्रम की मृत्यु से-जो उनके कथनानुसार सौ वर्ष बाद हुई—संवत् को शुरू मानते थे। इस प्रकार पहला संवत् तो शास्त्रीय संवत् के रूप में जनता में प्रतिष्ठा पा गया परन्तु दूसरे को केवल चारण, भाट आदि ने ही अपनाया। फलत वह भाटों का संवत् या भटायत संवत् कहलाया। यह संवत् दिल्ली और अजमेर के अन्तिम चौहान सम्राट के राज्य काल तक तो प्रचलित रहा किन्तु चौहान साम्राज्यों की समाप्ति के उपरान्त शास्त्रीय विक्रम संवत् का प्रचलन ही रहा। पाण्ड्या जी का कथन है कि यदि नियमानुसार रासो के संवतों की परीक्षा की जाए तो प्रत्येक स्थान पर १०० वर्ष का ही अन्तर मिलेगा। किन्तु पाण्ड्या जी की इस कल्पना के विरोध में अनेक आपत्तियाँ उठाई गईं। इन आपत्तियों में सर्व-प्रमुख यह थी कि पृथ्वीराज रासो में पृथ्वीराज चौहान का जो मृत्यु

संवत् दिया गया था उसमें १०० वर्ष जोड़ देने पर भी ठीक संवत् का ज्ञान नहीं होता। रासो में दिए गए संवतों में १०० वर्ष जोड़ देने पर भी पृथ्वीराज का ठीक मृत्यु संवत् उनसे भी नौ या दस वर्ष पीछे आता है। इस अन्तर को मिटाने के लिए पाण्ड्या जी ने पृथ्वीराज रासो में दिए गए पृथ्वीराज के जन्म-संवत् सम्बन्धी दोहे—

एकादस सै पंचदह विक्रम साक अनन्द।
तिहि रिपुजय को भए पृथिराज नरिंद॥

के आधार पर अनंद संवत् की कल्पना की। उन्होंने इस दोहे का अर्थ इस प्रकार किया—अ = शून्य और नंद = ९ अर्थात् ९० वर्ष रहित विक्रम संवत्। उन्होंने कहा कि विक्रम संवत् में से ९० या ९१ वर्ष घटा देने से 'पृथ्वीराज रासो' में दी हुई तिथियाँ शुद्ध निकल आती हैं और ९०-९१ वर्ष पीछे रहने का कारण यही है कि रासो में विक्रम संवत् का प्रयोग न करके अनंद संवत् का प्रयोग किया गया है। लेकिन उन्होंने ये ९० वर्ष किस लिए घटाए इसका कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दिया है। इसके लिए तो उन्होंने इतना ही कहा है—नंद वंशी शूद्र थे, इसलिए उनका राजत्व काल राजपूत भाटों ने निकाल दिया।

लेकिन आज इस संवत् को किसी विशेष मान्यता की प्राप्ति नहीं है। इसका मुख्य कारण डा० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदि द्वारा प्रस्तुत की गई निम्न युक्तियाँ हैं—

१. रासो में दिए गए संवतों में प्रत्येक स्थान पर ९० या ९१ वर्ष का अन्तर नहीं है। स्वयं पाण्ड्या जी पहले तो १०० वर्ष का अन्तर बतलाते हैं और फिर ९० या ९१ वर्ष का अन्तर बतलाने लगते हैं।

२. 'विक्रम साक अनंद' में अनंद शब्द के अर्थ में जो खींचातानी की गई है वह एकदम निराधार और भ्रामक है।

३. 'विक्रम साक अनंद' का अर्थ स्वयं ही अनंद संवत् की ओर संकेत कर रहा है—ऐसा प्रामाणिक रूप से नहीं कहा जा सकता क्योंकि रासो में

उल्लिखित सवत् में एक निश्चित अन्तर नहीं है। अत रासो में किसी विशिष्ट अप्रचलित सवत् का प्रयोग किया गया है ऐसा नही कहा जा सकता।

४. यदि अनद सवत् की कल्पना को सत्य मान लिया जाए तो डा० दशरथ शर्मा आदि की नवीनतम खोजो को हमें भ्रामक मानना होगा क्योंकि यदि रासो मे ९० या ९१ वर्ष के अन्तर वाले अनद या विक्रम सवत् का प्रयोग किया गया है, तो लघुतम प्रति में दिए गए सवत् क्यों प्रचलित सवत् से मिल जाते हैं ?

(ग) चन्द तथा भूषण का वीर काव्य—चन्द हिन्दी के आदि काल के प्रतिनिधि कवि हैं और भूषण रीति काल के वीर रस के प्रमुख कवि हैं। इस प्रकार दोनो दो विभिन्न युगो की, विभिन्न राजनीतिक, सास्कृतिक तथा सामाजिक परिस्थितियो की, विभिन्न साहित्यिक वातावरण की देन हैं। किन्तु फिर भी कितने ही ऐसे कारण हैं जिनके परिणामस्वरूप इन दोनो के तुलनात्मक अध्ययन का विचार हमारे अन्तम में उठा करता है। फलत. आगामी पक्तियो में हम इन दोनो का तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करेंगे। अस्तु।

चन्द्रवरदाई और भूषण दोनो ने ही वीर काव्यो की रचना की है। दोनो ही ने अपने काव्यो में वीर भावना का प्रदर्शन अपने नायको की वीरता, आतक, निर्भीकता, साहस तथा आत्म-बलिदान के चित्रण में किया है। शास्त्रीय दृष्टिकोण से वीर चार प्रकार के होते हैं—युद्धवीर, धर्मवीर, दयावीर तथा दानवीर, पर इन दोनो लेखको ने युद्धवीर को ही प्रमुख रूप से अपने वर्णन का आधार बनाया है। अपने अपने नायक की दानवीरता का वर्णन भी उन्होंने अत्यत मनोयोग के साथ किया है, पर नायको के आश्रयदाता होने के कारण दोनो ही के काव्य में कही कही चाटुकारिता की गध आने लगती है।

चन्द्रवरदाई और भूषण दोनों ही कवियो ने युद्ध चित्रण में अपने काव्य-कौशल का पर्याप्त परिचय दिया है। यदि चन्द्रवरदाई अपने नायक पृथ्वीराज की स्फूर्ति का चित्रण इन शब्दो में करते हैं—

उट्ठि राज प्रथिराज बाग लग मनों वीर नट।
कढ़त तेग मन बेग, लगत मनों बीज झट्ट घट॥

तो महाकवि भूषण अपने नायक शिवा जी के आतंक का वर्णन और भी अधिक मनोयोग पूर्वक करते हैं। शिवाजी के आक्रमण की सूचना मिलते ही शत्रु-स्त्रियाँ कितनी व्याकुल और भयभीत हो उठती हैं, इसका एक चित्र देखिए—

आगरे अगारन ह्वै फाँदती कगारन छ्वै,
बाँधती न बारन मुखन कुम्हलानियाँ।
कीबी कहै कहा औ गरीबी गहे भागी जायें,
बीबी गहे सूथनी औ, नीबी गहे रानियाँ।

वस्तुतः इस प्रकार के वर्णनों को पढ़ कर तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये कवि मुद्रा विशेष के सूक्ष्मातिसूक्ष्म हाव-भाव को पहचानने और उसका शब्द-चित्र प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त थे।

किंतु इन समानताओं के साथ ही एक वास्तविक अन्तर भी है और वह यह कि चन्दबरदाई ने अपने काव्य का [illegible] महाकाव्य की [illegible] है वहाँ भूषण ने अपने काव्य की रचना मुक्तक रूप में की है अतः चन्दबरदाई के काव्य में जहाँ जीवन की विविधता के दर्शन होते हैं वहाँ भूषण के काव्य में एक रसता है ही।

चन्द तथा भूषण के काव्य में वास्तविक अन्तर स्पष्ट करने वाला दूसरा उपादान अलंकारिकता का है। चंद के काव्य में अलंकारों का प्रयोग हुआ तो है किंतु [illegible] रूप में। [illegible] अलंकारिक [illegible] को [illegible] ऐसा अनुभव होता है कि कवि ने अलंकार के लिए काव्य की रचना नहीं की है अपितु अलंकार स्वयं [illegible] में [illegible] चला आया है। वस्तुतः चंद ने अपने काव्य-रचना में अलंकारों की अपेक्षा भावना पर अधिक बल दिया है किंतु जहाँ कहीं अलंकार का प्रयोग हुआ है वहाँ [illegible] —

दवै पहार मनो भार के भिरे [illegible]।
[illegible] ॥

किंतु भूषण ने अपनी प्रशसात्मक उक्तियो में प्राय सर्वत्र अतिशयोक्ति तथा अत्युक्ति का सहारा लिया है। कहीं-कही तो इसके कारण उनकी उक्ति में कृत्रिमता ही नही आ गई है अपितु हास्यास्पद भी हो गई है। यथा एक स्थल पर उन्होने शिवाजी और औरगजेब (उपमेयो) को क्रमश इन्द्र और कृष्ण की उपमा दी है, फिर शिवाजी को मस्त हाथी की उपमा दे दी गई है (भूषण ग्रथावली छ० ३४)। कहने की आवश्यकता नही कि यह उपमा अनुचित ही नही पूर्णत हास्यास्पद है।

किंतु इन सभी तात्विक अतरो के अपने-अपने कारण हैं। चद्रवरदाई जहाँ ऐसे युग में पैदा हुए थे जिसमे वीरत्व का बोलबाला था वहाँ भूषण का युग ही दूसरा था। उनके युग मे तो सर्वत्र विलासिता की लहर ही प्रवाहित थी। राज्याश्रित सभी कवि शृङ्गार-पूर्ण ग्रथो की रचना में ही लगे हुए थे। ऐसे समय में भूषण ही एक ऐसे अपवाद थे जिन्होने अपने काव्य का नायक छत्रपति शिवाजी और महाराज छत्रसाल जैसे वीरों को बनाया और वीर-रसपूर्ण काव्य का प्रणयन किया।

(घ) रासो काव्यों की विशेषताएँ—हिन्दी साहित्य के आरम्भिक दिनो में राजपूत राजाओ के आश्रय में रहने वाले कवियो ने एक विशेष प्रकार के काव्य लिखे जिनके अन्त मे प्राय 'रासो' शब्द जुडा रहता था। इस 'रासो' शब्द का वास्तविक अभिप्राय क्या होता था इस सम्बन्ध में विद्वानो में पर्याप्त मतभेद है। किन्तु इतना होने पर भी रासो ग्रन्थो के अनुशीलनोपरात उसकी विशेषताएँ स्वत स्पष्ट हो जाती हैं यथा—

१ इन कवियो का मूल लक्ष्य श्रोताओं अथवा पाठको के हृदय में किसी रस-विशेष का सचार कराने की ओर है। इन रस योजना में भी कवियों को वीर और शृङ्गार ही अधिक प्रिय हैं। मूलत तो वीर रस की योजना में ही कवि की प्रवृत्ति अधिक लीन हुई है किन्तु शृङ्गार रस को उसने सहायक रूप में अपना लिया है।

२ रासो काव्यों की दूसरी विशेषता कलेवर का विस्तार है, वर्णनों की

घटित होता है। नायक के जीवन में जितनी भी घटनाएँ आती हैं उनका इतना व्यापक तथा विस्तृत चित्रण अन्यत्र कम देखने को मिलता है। इतना ही नहीं इन रासो काव्यों में अप्रस्तुत सामग्री को एकत्र करने का प्रयास नहीं किया गया है प्रत्युत प्रस्तुत सामग्री ही इतनी है कि पाठक [illegible] बनाकर ग्रहण करने वाले के तद्विषयक ज्ञान और अनुभव का परिचय हो जाता है। यदि रण-भूमि है तो कवि बतलावेगा कि किस किस देश से सेना आई है सेनापति का नाम क्या है, उसका रूप कैसा है और उसकी जाति क्या है, शस्त्र कितने हैं आदि आदि। वस्तुतः ये वर्णन इस बात के साक्षी हैं कि रासो काव्यकार कोरे कवि ही न थे अपितु जिन बातों का वर्णन करते थे उसकी अनुभूति भी उन्हें होती थी। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि बहुत-सी बातें अनुभूत न होकर प्रतिभाजनित या कल्पना से उत्पन्न भी रही होंगी।

३ रासो काव्यों की तीसरी मूल विशेषता यह है कि इन काव्यों का क्षेत्र सङ्कुचित न होकर व्यापक है। उसमें 'कवि के सत्य' के साथ ही साथ इतिहास-कार का सत्य भी झलकता है। इन काव्यों की घटनाएँ भावना जगत में तो सच्ची हैं ही, यथार्थ जगत में भी नितान्त मिथ्या नहीं हैं।

४. रासो काव्यों की चौथी विशेषता भाषा विषयक है। अनेक विद्वानों ने रासो ग्रन्थों की भाषा को बनावटी बतलाया है और इसका कारण उन्होंने यह लिखा है कि रासो काव्य ग्रन्थों की भाषा में एकरूपता नहीं है। एक ही काव्य में दो भिन्न भिन्न प्रकार की भाषाएँ दिखलाई पड़ती हैं। परन्तु हमारे मतानुसार यह बात रासो काव्यों के लिए भूषण-स्वरूप ही है, दूषण नहीं। वस्तुतः रासो काव्यग्रन्थों की भाषा संबंधी विभिन्नता ही यह बताती है कि समय के [illegible] भाषा बदलती है, [illegible] में एक ही [illegible] दूसरी। [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] है।

५ रासो काव्यों की [illegible] [illegible] [illegible] है [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] का

प्रयोग तो अवश्य किया है किन्तु कही पर भी अस्वाभाविकता या कृत्रिमता नही आने दी है। साथ ही उत्प्रेक्षा तथा अत्युक्ति अलकारो के प्रयोग में साहित्यिक परम्परा का कौशल न दिखा कर अनुभूति ज्ञान को ही प्रमुख रक्खा है।

६ रासो काव्यो की छठी विशेपता काव्यरूप तथा कथा-विन्यास से सबद्ध है। संस्कृत में प्रबध काव्य लिखने की यह प्रणाली थी कि सारी कथा को काण्ड, सर्ग या अध्यायो में इस प्रकार विभक्त कर दिया जाता था कि नायक-नायिका के जीवन मे काल-क्रम का निर्वाह हो सके। अर्थात् कवि नायक के जन्म से लेकर अन्त तक की घटनाओ का क्रमश वर्णन करता था, सारी कथा के कुछ भाग हो जाते थे, प्रत्येक भाग का नामकरण भाग विशेप की सबसे महत्वपूर्ण घटना पर हो जाता था। रामायण में बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड आदि का विभाजन इसी प्रथा पर किया गया है। किन्तु रासो काव्य में ऐसा नही होता। इनकी कथा प्रत्येक घटनास्थल पर अपना नया खण्ड पर्व या समय प्रारम्भ करती है, भले ही एक खण्ड या समय केवल कुछ ही छदों में हो जाए और दूसरे खण्ड में कथा अनेक पृष्ठो और सैकडो छदो तक चलती रहे।

संस्कृत मे महाकाव्य के लिए मध्यम विस्तार के आठ से अधिक सर्गो की अपेक्षा है यथा—

नातिस्वल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका।

—(साहित्य दर्पण)

यदि कथा में एक नायक का वर्णन न होकर एक पूरे वंश का वर्णन हुआ (जैसा कि रघुवंश में है) तो सर्गों की संख्या २० के आसपास ही देखी गई है परन्तु न तो यह मिलता है कि सर्गो के विस्तार में इतनी विषमता हो और न सर्गो की संख्या ६९ तक पाई जाती है—आश्चर्य तो यह है कि रासो काव्य केवल एक ही राजा के यशोगान में इतने सर्ग (खण्ड, पर्व या समय) लगा देते हैं जितने कि साहस एक पूरे वंश का वर्णन करने वाले संस्कृत महाकाव्य भी न कर सके। अनेक विद्वानों ने रासो काव्यों की इस विशेषता को एक दोष

माना है किन्तु हमारा विचार यह है कि जो दोष सभी ग्रंथों में मिलें उसे उनका विशेष लक्षण समझना चाहिए।

७ रासो काव्यों की सातवीं और अन्तिम विशेषता यह है कि उनका प्रभाव परवर्ती साहित्य पर भी पड़ा है। रासो काव्यों और सूफी प्रेम काव्यों की तुलना करते समय तो यह तथ्य और भी अधिक सुलक्षित हो उठता है। जायसी के पद्मावत में कथा का खण्डों में जो विभाजन पाया जाता है उनमें रासो काव्यों की इसी परम्परा का निर्वाह है। यहाँ भी एक ही नायक का वर्णन ५७ परिच्छेदों में है और प्रत्येक को खण्ड ही नाम दिया गया है। खण्डों के नाम में अद्भुत विषमता है तथा संस्कृत महाकाव्य परम्परा की अवहेलना है। ऐसा जान पड़ता है कि पद्मावत में भी रासो काव्यों की परम्परा का निर्वाह है जिसे शुक्ल जी ने संस्कृत महाकाव्य परम्परा से भिन्न देखकर मसनवी शैली कह दिया है।



आदि पर्व

आदि देव प्रनम्य गुरय, वानीय वंदे पय।
सिष्टं धारन धारय वसुमती, लच्छीस चरनाश्रय॥
त गु तिष्टति ईस दुष्ट दहनं, सुरनाथ सिद्धिश्रय।
थिर चर जंगम जीव चंद नमयं, सर्वेस वर्द्धीमय॥१॥

शब्दार्थ—आदि देव—आदि देव, प्राचीन परब्रह्म, प्रनम्य—प्रणाम कर के, गुरु—गुरु को, वानीय—वाणी, वंदे=वंदना करता हूँ, पय=पद; सिष्ट=सृष्टि को, लच्छीस=लक्ष्मी के पति, विष्णु, त गु—तमोगुण को; धारन—धारण करने वाले, थिर=स्थिर।

प्रसंग—इस पद में कवि ने तीन मान्य देवी देवताओं की स्तुति की है। कवि का कथन है कि—

की वंदना की है। अपने इस भाव को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिए कवि ने चतुर्थ पंक्ति में चिर, चर और जंगम शब्दों का प्रयोग किया है।

प्रथमं भुजंगी सुधारी ग्रहन। जिने नाम एकं अनेकं कहन॥
दुती लम्भयं देवतं जीवतेसं। जिनें विश्व राख्यौ बली मंत्र सेसं॥
चवं वेद बंभं हरी किति भाखी। जिनें धम्म साधम्म संसार साखी॥
तृती भारती व्यास भारत्थ भाख्यौ। जिनें उत्त पारथ्थ सारथ्थ साख्यौ॥
चवं सुक्कदेवं परीखत्त पायं। जिनें उद्धर्यो अब्ब कुर्वंस रायं॥
नरं रूप पंचम्म श्रीहर्ष सारं। नलैराय कंठं दिने पद्ध हारं॥
छटं कालिदासं सुभाषा सुबद्धं। जिनें वागवानी सुवानी सुबद्धं॥
कियो कालिका मुक्ख वासं सुसुद्धं। जिनें सेत बंध्योति भोज प्रबंधं॥
सतं डंडमाली उलाली कवित्तं। जिनें बुद्धि तारंग गंगा सरित्तं॥
जयद्देव अट्ठं कवी कव्विरायं। जिनें केवलं किति गोविंद गायं॥
गुरं सब्ब कब्बी लहू चंद कब्बी। जिनें दर्सियं देवि सा अंग हब्बी॥
कवी किति किती उकती सुदिक्खी। तिनें की उचिष्टी कवी चंद भक्खी॥२॥

शब्दार्थ—भुजंगी = भुजंग प्रयात् आदि छंदों में बद्ध ईश्वर का छंदोमय रूप, भुजंगी सुधारी ग्रहन = भुजंग को सुधारने वाले अर्थात काली नाग को नाथने वाले अर्थात विष्णु रूप श्री कृष्ण भगवान, भुजंगी = भुजंग रूप अर्थात शेष-नाग के रूप में विष्णु, भुजंगी ग्रहन = भुजंगों को ग्रहण करने वाले अर्थात् शिवजी, दुती = द्वितीय, देवतं जीवतेसं = देवताओं के भी जीवतेश अर्थात ब्रह्मा, बली = बल से, सेस = शेष, चवं = चारों, बंभ = कहने वाला, किति = कीर्ति, भाख्यौ = गाई गई है, भारत्थ = महाभारत, सुक्कदेवं = शुकदेव मुनि को, परीखत्त = राजा परीक्षित को, अब्ब = सारे, कुर्वंस = कौरव वंश, जिनें वागवानी सुवानी सुबद्दं = जिन्हें सुंदर वाणी अर्थात् सरस्वती का वरदान प्राप्त था, गुरं = गुरु, बड़े, लहू = लघु, छोटा, उचिष्टी = जूठन।

प्रसंग—प्रस्तुत छंद में कवि ने अपने से पूर्व कवियों का स्मरण किया है। इतना ही नहीं अपने से पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कवियों के समान ही अपनी

दीनता के भाव को भी प्रकट किया है। कवि ने इस छंद में भुजंग प्रयात छंद का प्रयोग किया है और पूर्ववर्ती कवियों के समान उसकी भी रचना की है। परन्तु, भुजगी शब्द के श्लेषार्थक होने के कारण इस पंक्ति के कई अर्थ लिए जा सकते हैं।

अनुवाद—सर्व प्रथम मैं भुजग प्रयात आदि छंदों में बद्ध ईश्वर के ज्योति-मय रूप को जो इस संसार में सबसे सूक्ष्म है प्रणाम करता हूँ, अथवा मैं सर्व प्रथम उन परमात्मा को नमस्कार करता हूँ जिसने भुजग को सुधारा था अर्थात् कालीनाग को नाथने वाले विष्णु रूप श्रीकृष्ण भगवान् को नमस्कार करता हूँ अथवा भुजग रूप अर्थात् शेष-नाग के रूप में जो विष्णु हैं उनका स्मरण करता हूँ अथवा सर्पों को ग्रहण करने वाले शिवजी को नमस्कार करता हूँ जिनका एक नाम है तथा स्मरण करने की प्रणाली अनेकों हैं।

द्वितीय स्थान पर मैं देवताओं के भी जीवितेश, अर्थात ब्रह्मा को नमस्कार करता हूँ जिसने अपने बल से संसार के अंदर मन्त्रों को शेष रखा है। (उन) चारों वेदों को गाने वाला है (जिनमें) ईश्वर की कीर्ति गाई गई है, जिनमें अनेकानेक धर्मों का सार भरी है।

तृतीय स्थान पर मैं उन वेदव्यास जी का स्मरण करता हूँ जिन्होंने वाणी में महाभारत रचा है; जिनमें श्रीकृष्ण का भी स्मरण किया गया है।

चतुर्थ स्थान पर मैं शुकदेव मुनि का और राजा परीक्षित का ध्यान करता हूँ जिन्होंने सारे कौरव वंश का उद्धार किया।

पंचम स्थान पर महान् राजा श्री हर्ष का स्मरण करता हूँ जिन्होंने नाना नर की कथा को साकार बना दिया।

छठे स्थान पर मैं कवि कालिदास का स्मरण करता हूँ जिन्हें सुन्दर वाणी अर्थात् सरस्वती का वरदान प्राप्त था, जिन्होंने सुंदर नाटक, महाकाव्य रचे हैं और कोष ग्रंथ में भी उनका मेघदूत नामक काव्य का प्रयोग किया है।

सप्तम स्थान पर इस [illegible] का स्मरण करता हूँ जिनका पद माधुर्य पूर्ण है और जिन के मस्तिष्क से प्रतिभा [illegible] हैं [illegible] बहती रहती है जिस प्रकार से गंगा में लहरें।

अष्टम स्थान पर उस कविराज जयदेव का स्मरण करता हूँ जिनकी कीर्ति का मेरु दण्ड केवल गीति गोविंद है।

अतत उन सब कवियो को प्रणाम करता हूँ जिन्होने शैशवावस्था में ही सार-स्वर-बोध नामक ग्रथ सीख लिया था।

कवि चद्रवरदाई अतत. अपनी दीनता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि पूर्व-वर्त्ती कवियो में वडे वडे कवि हुए हैं जिनके काव्य में वडी सुदर सुदर उक्तियाँ दिखाई पडती हैं परतु मैं छोटा हूँ और उन्ही की भूठन को मैंने कह दिया है।

उचिष्ट चद छंदह वयन। सुनत सु जपिय नारि॥
तनु पवित्र पावन कविय। उकति अनूठ उधारि॥ ३॥

शब्दार्थ—छदह=छद सवधी, वयन=वचन, जपिय=वोली, तनु=शरीर, कविय=कवित्त, उकति=उक्तियाँ, उधारि=उद्धार।

अनुवाद—कवि चद के छद सवधी वचनो को उच्छिष्ट सुन कर चद्रवरदाई की पत्नी वोली—आपके छद शरीर को पवित्र करने वाले हैं, उनमें अनूठी उक्तियाँ हैं और जो उन्हे सुनता है उसका उद्धार हो जाता है (अत आप उन्हें उच्छिष्ट क्यो कहते हैं। वस्तुत आप उच्च कोटि के कवि हैं।)

कहैं कति सम कंत। तंत पावन यह कव्विय॥
तंत मंत उच्चार। देव दरसिय सीभ हव्विय॥
तत वीर उग्रंत। रण राजन सुख दाइय॥
याल केलि प्रत्यग। सुरनि उद्धरि कविताइय॥
अवलव उकति उच्चार करि। जिहित मोहि कोविद रहै॥
सम ब्रह्मरूप या सब्द कहैं। क्यों उचिष्ट कवियन कहै॥ ४॥

शब्दार्थ—कंति=पत्नी, कत=पति, तत मत=तत्र-मत्र; देवि=सरस्वती देवी, दरसिय=दर्शन दे देती है, राजन=राजाओ को, दाइय=देने वाली है, बालकेलि=बाल-केलि, बाल क्रीडाएँ, सुरनि=देवताओ का, उद्धरि=उद्धार, अवलम्ब=अवलम्बन; कोविद=विद्वान।

अनुवाद—कवि-पत्नी पति से पुनः कहती है कि आपकी वाणी अर्थात् कविता लय-गति से युक्त है और जो कोई आपके काव्य का अनुशीलन कर लेता है उसके हृदय में साक्षात् सरस्वती देवी के दर्शन हो जाते हैं। आपकी कविता को पढ़ कर वीर लोग युद्ध में प्रचण्ड रूप धारण कर लेते हैं। (यह) बड़े-बड़े यशस्वी राजाओं को भी सुख देने वाली है। इसमें बाल-क्रीड़ाओं का वर्णन है फलतः इसके द्वारा अन्तर में वात्सल्य रस की उत्पत्ति हो जाती है। सुन्दर सुन्दर शब्दों के द्वारा यह श्रोता या पाठक देवताओं के हृदय का भी उद्धार करने वाली है। आपकी उक्ति का अवलम्बन करके अर्थात् उदाहरण पढ़के बड़े बड़े विद्वान भी मुग्ध होकर रह जाते हैं। अतः आप ऐसे सुन्दर, प्रशस्त और छन्द-युक्त काव्य का प्रणयन करने के उपरान्त भी अपने को दूसरे कवियों का उच्छिष्ट क्यों स्वीकार करते हैं।

सम वनिता वर वंदि । चंद जंपिय कोमल रत ॥
सबद ब्रह्म इक सत्ति । अपर पावन वहि निर्मल ॥
जिहित शब्द नहि रूप । रेख आकार वर्न नहि ॥
अकल अगाध अपार । पार पावन चवपुर महि ॥
तिहि सबद ब्रह्म रचना करौं । गुरु प्रसाद सरसैं प्रसन ॥
कृपापि सु उरति सुरौं जुगति । तौ कमल वदनि रचितह वसन ॥ ४ ॥

शब्दार्थ—सम = समान; वनिता = पत्नी, वर = श्रेष्ठ, वंदि = वीणा, कोमल रत = सुन्दर स्वर से, सबद = शब्द, वर्न = वर्ण, चवपुर = तीनों लोक, अगाध = अगम्य, कमल-वदनि = कमल के समान मुख वाली, रचितह = रचिता।

अनुवाद—चंद अपनी पत्नी से समान ही कोमलस्वर [illegible] कहता है कि तुमने [illegible] जो शब्द ब्रह्म [illegible] ठीक ही है। और [illegible] कविता [illegible] है। [illegible] शब्द ब्रह्म की रचना की है जो सत्य है, जिसका रूप, रेख और आकार नहीं है परन्तु तीनों लोकों [illegible] हुआ भी है। जैसे इस

शब्द ब्रह्म की रचना अपने गुरु के प्रसाद से की है अत यह (मेरा काव्य) ब्रह्म सम्बन्धी सभी जिज्ञासाओं को शान्त कर देगा। (चन्द का कथन है कि) हे कमल-वदनी ! यद्यपि मेरा उद्देश्य सुन्दर उचित कहना ही है किन्तु किसी उक्ति में भूल कर जाऊँ तो कविगण मेरा हास्य करेंगे। (अत मैंने ऐसा कह दिया है।)

तुम वानी वरबद। नाग देखंत विमल मति॥
छंद भंग गन रहित। कंठ कौमार काव्य कृत॥
वुधि तरंग सम गंग। उकति उच्चार अमिय कल॥
सुरन सुनत विहसंत। मंत जनु वस्य करन वल॥
अवतार भूप प्रिथिराज पहु। राज सुख तिन सम लहहि॥
वीराधि वीर सामत सव। तिन सु गल्ह अच्छी कहहि॥ ६॥

शब्दार्थ—वानी = वाणी, सरस्वती, वर = श्रेष्ठ, वृंद = वदनीय, नाग = नाग जाति, देखत = देखने में, विमल = स्वच्छ, मति = वुद्धि, सम = समान, गग = गगा, अमिय = अमृत, वस्यकरन = वशीकरण, गल्ह = वात।

अनुवाद—पति के वचनो को सुनकर पत्नी का कथन है—

तुम वाणी अर्थात् सरस्वती के वरदान से युक्त तथा वदनीय हो अथवा तुम विद्वानो के द्वारा वदना करने योग्य हो। देखने में इतने सुन्दर हो जैसे नाग जाति और वुद्धि तुम्हारी बडी सुन्दर है। तुम छद—दोप और जगण रहित काव्य रचना करते हो। तुम कुमारावस्था से ही काव्य रचना करने लगे हो। तुम नवोन्मेष शालिनी प्रतिभा वाले हो और तुम्हारी प्रतिभा गगा की तरग के समान नई नई कल्पनाओ में उद्वुद्ध होती है। तुम्हारा उच्चारण भी अमृत की कला के समान है। तुम्हारी कविता को सुनकर देवता भी हर्षित होते हैं और वह श्रोता को वशीकरण मत्र के समान अपने वश में कर लेती है। सामन्त लोग भी जब आपकी कविता को सुनते हैं तो अच्छी वताते हैं।

गज गवनी प्रति चद। छंद कोमल उच्चारिय॥
मनहरनी रस वेलि। सुरन सागर रस धारिय॥

वंक नयन वय बाल। प्रान वल्लभ सुखदाइय॥
अगुन निगुन गुरु प्रदानि। गवरि पूजा फल पाइय॥
भए आदि अंत कविता जिते। तिन अनंत गति मति कहिय॥
अनेक ग्रन्थ तिन वरनवत। यौं उचिष्ट मति मैं लहिय॥ ७॥

शब्दार्थ—गज-गमनी=गज गामिनी, वंक=वक्र, वय=आयु, गवरि-पूजा=गौरी पूजा, वरनवत=वर्णित है।

अनुवाद—महाकवि चन्द अपनी उन प्राण-वल्लभा को सम्बोधित करते हुए कहते हैं जो मन को हरने वाली, सुख देने वाली, रस की ज्ञाता, गुणों की सागर है तथा जो कटाक्ष करने में कुशल, छोटी अवस्था वाली, तमस एवं रजस गुणों से विहीन तथा सत्व गुणों से युक्त है, गुरु की बात को ग्रहण करने वाली है, तथा पार्वती की पूजा का फल प्राप्त करने वाली है कि पूर्ववर्ती आदि कवि वाल्मीकि से लेकर परवर्ती महाकवि श्री हर्ष तक ने अपनी अपनी नवोन्मेषिनी प्रतिभा शक्ति के अनुसार अथाह काव्य सृजना की है अतः इसी कारण महाकवि चन्द अपनी कृति को उच्छिष्ट मानते हैं।

कृलि रित्ति चहुआन की। जुगानि जुग निवास॥
अप्प मत्ति तरकै सबल। कनि करौ रति हास॥ ८॥

शब्दार्थ—रित्ति=रीति, चहुआन=पृथ्वीराज चौहान, जुगानि जुग=युग युग तक, सबल=सबल, मति=बुद्धि, हास=हँसी।

अनुवाद—चन्दबरदाई का कथन है कि मैंने अपनी काव्य रचना के लिए ऐसे पृथ्वीराज की कथा को चुना है जिसकी रीति युगों युगों तक स्थायी रहने वाली है और जिसमें [illegible] हो जाते हैं। अतः मेरी कविता को पढ़कर कोई उपहास नहीं कर सकता।

पच नगरी सुभग। [illegible] कनक गज सोभंनी॥
हर फनी गुनरीत। रच्छरियं नैन जोवनि॥ ९॥

शब्दार्थ—[illegible]

[illegible] रही है।

अनुवाद—प्रस्तुत पद में कवि ने गूजरी और रानी के भोजन की तुलना के द्वारा अपने और अपने पूर्ववर्त्ती कवियो की तुलना की है। कवि कहता है कि एक ओर तो सम्पन्न परिवार की रानियो के भोजन की शोभा सुवर्ण थाल में परोसे गए दूध, शक्कर और सुन्दर भात से होती है तो दूसरी ओर गूजरी कासे की थाली में रावडी (मट्ठे मे पकाया हुआ ज्वार का अन्न) से होती है तो क्या वह गूजरी जीवित नही रहती होगी अर्थात् रहती होगी अर्थात् जिस प्रकार से रानियो के सुवर्ण थाल में दूध, शक्कर और भात का भोजन खाने पर भी गूजरी केवल रावडी पी कर जीवित रहती ही है उसी प्रकार से अन्य पूर्ववर्त्ती कवियो के सुन्दर काव्य के रहते हुए भी मेरे काव्य का आदर होगा।

सत्त खनै अवास। महिलान मद्द सद्द नूपरया॥
सतफल वज्जुन पयसा। पव्वरिय नैव चालंति॥ १०॥

शब्दार्थ—सत्त खनै = सात मजिले, मद्द = मद, सद्द = शब्द, नूपरया = नूपुर, सत = श्वेत, पव्वरिय = पर्वतीय, नैव = नही, चालति = चलती है।

अनुवाद—कवि का कथन है कि जिस प्रकार से सात मजिल के महल में रानियो के नूपुरो के मद मद स्वर होते रहने पर भी गूजरी श्वेत वर्ण सन के वृक्षो की फलियो को पैरो में बाध कर चलना बद नही कर देती उसी प्रकार से अन्य पूर्ववर्ती कवियो के सुन्दर काव्य के रहते हुए भी मेरे काव्य का आदर होगा।

रव्वरियं रस मंद। क्यूं पुज्जति साध अमियेन॥
उकति जुकत्तिय ग्रन्थं। नचि कत्थ कवि कत्थिय तेन॥ ११॥

शब्दार्थ—अमियेन = अमृत, तेन — उसको।

अनुवाद—कवि चन्द का कथन है कि जिस प्रकार से रावडी रसहीन है उसकी अमृत के साथ तुलना नहीं हो सकती किन्तु जिस व्यक्ति को अमृत उपलब्ध नही होता वह रावडी को फेंक नही देता है ठीक उसी प्रकार से इस ससार में सुन्दर उक्तियो तथा युक्तियो आदि से परिपूर्ण काव्य यहाँ नहीं है अर्थात्

समर्थ है किन्तु फिर भी मैं काव्य सृजन कर रहा हूँ जो मेरे ही उचित प्रतीत हो सकता है।

जाते बसंत मासे। कोकिल झंकार अंब वन करय ॥
तर बब्बूर विरष। कपोतयं नैव कलयति ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—जात बसंत मासे = बसंत मास के आने पर, अंब = आम, करय = करती है, विरष = वृक्ष, नैव = नहीं, कलयति = कलापती है।

अनुवाद—यद्यपि बसंत मास के आ जाने पर कोकिल अपने पंचम स्वर से आम्र वन को गुंजित कर देती है तो भी उस तुच्छ बबूल के वृक्ष पर बैठी कपोती बोलना बंद नहीं कर देती। इसी प्रकार से अनेक श्रेष्ठ कवियों के काव्यों के होते हुए भी मैं काव्य रचना कर रहा हूँ।

सहस्र किरन सुभाउ। उगि आदित्य गगन अंबर ॥
खद्योत उग्गा न मारो। खोटलये नैव झलकंति ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—सहस्र = सहस्र, सुभाउ = स्वभाव, उगि = उग कर, आदित्य = सूर्य, अंबर = अंबर को, खोटलय = ज्योति कीट, जुगनू, झलकंति = झलकता है।

अनुवाद—जिस प्रकार से सहस्र किरणों के स्वभाव वाले सूर्य के निकल कर आकाश में उदय होकर अंधकार को दूर कर दिए जाने पर भी छोटे से शरीर वाला ज्योति कीट अर्थात् जुगनू अपनी ज्योति प्रकाशित करना बंद नहीं कर देता उसी प्रकार से अनेक सुन्दर काव्यों एवं कवियों के होते हुए भी मैं काव्य-रचना कर रहा हूँ।

कंचन मंहि सम्पूरी। नारी नेह नयन श्रृंगार ॥
सा नारि पति कुमारी। किं तजति नैव मंडयति ॥ १४ ॥

शब्दार्थ—[illegible] सम्पूरी [illegible], सा = वह, नारि = स्त्री, कुमारी = कुरूपी।

अनुवाद—जिस प्रकार से स्वर्णालंकार से [illegible] सम्पूर्ण श्रृंगार करने पर भी कुरूपा नारी काजल को [illegible]

नहीं कर देती उसी प्रकार से अनेकों सुन्दर कवियों एवं काव्यों के होते हुए भी मैं काव्य रचना कर रहा हूँ।

ईस सीस असमान। सुरसुरी सलिल तिष्ट नित्यानं ॥
पुनि गलती पूजारा। गड्डुंवा नैव ढालति ॥ १५ ॥

शब्दार्थ—सुरसरी = गंगा, तिष्ट = रहती है, नित्यान = प्रतिदिन; गडुवा = लोटा; नैक = नहीं, ढालति = चढ़ाता है।

अनुवाद—यद्यपि ईश के शीश पर सुरसरी (गंगा) का अद्वितीय जल सदा विद्यमान रहता है किन्तु फिर भी पुजारी लोग शिव के गले पर अपने लोटे के जल को चढ़ाना बन्द नहीं कर देते उसी प्रकार से अनेकों कवियों एवं काव्य-ग्रन्थों के होते हुए भी मैं काव्य सृजन कर रहा हूँ।

कहां लगि लघुता बरनवों। कविन दास कवि चंद ॥
उन कहि ते जो उव्वरी। सोय कहों करि छंद ॥ १६ ॥

शब्दार्थ—लगि = तक, बरनवो = वर्णन करूँ, उव्वरी = बाकी बच गया है।

अनुवाद—कवि चंद अपनी दीनता प्रकट करते हुए कहते हैं कि मैं अपनी लघुता का वर्णन कहाँ तक करूँ। मैं तो केवल पूर्ववर्त्ती कवियों का दास हूँ और पूर्ववर्त्ती कवियों में से जो कुछ बच गया है उसी का वर्णन मैंने किया है।

सरस काव्य रचना रचौं। खल जन सुनि न हसंत ॥
जैसे सिंधुर देखि मग। स्वान सुभाव भुसंत ॥ १७ ॥

शब्दार्थ—रचना रचौं = प्रणयन कर रहा हूँ, खल = दुष्ट, सिंधुर = हाथी, भुसत = भौंकते हैं।

अनुवाद—कवि का कथन है कि मैंने सुन्दर एवं सरस काव्य की रचना की है जिसे सुनकर अथवा पढ़कर दुष्ट व्यक्तियों को मेरा उपहास नहीं करना चाहिए किन्तु जैसे हाथी को मार्ग पर जाते हुए देखकर कुत्ते स्वभावानुसार भौंकने लगते हैं उसी प्रकार से यदि दुष्ट जन मेरा उपहास करें तो मेरा कोई दोष नहीं है।

तौ पनि सुजन निमित्त गुन। रचिये तन मन फूल॥
जूका भय जिय जानिकैं। क्यों डारिये दुकूल॥ १८॥

शब्दार्थ—तौ = तब, पनि = फिर।

अनुवाद—तब फिर सज्जनों के [illegible] गुणों के लिए कवि तन-मन से प्रफुल्लित होकर रचना करता है और त्रुटियों के भय से काव्य-सृजन उसी प्रकार बन्द नहीं कर देता जिस प्रकार जूँओं के डर से कोई वस्त्र नहीं फेंक देता।

मुक्ताहार विहार सार सुबुधा, अबुधा बुधा मोदिनी॥
सेत चीर सरीर नीर गहिरा, गौरी गिरा जोगनी॥
वीना पानि सुबानि जानि दधिजा, हंसा रसा आसिनी॥
लम्बोजा चिहुरार भार जघना, विघ्ना घना नासिनी॥ १९॥

शब्दार्थ—मुक्ताहार = मोतियों का हार, विहार = [illegible], सार = सार रूप; सुबुधा = अच्छी बुद्धि, अबुधा = मूर्ख; बुधा = बुद्धिमान, सेत = श्वेत, सफेद; नीर-गहिरा = गहरा नीर अर्थात् सागर समुद्र, पानि = हाथ, दधिजा = लक्ष्मी देवी, चिहुरार = केशपाश, नासिनी = नाश करने वाली है।

अनुवाद—प्रस्तुत पद में कवि ने सरस्वती के रूप का वर्णन किया है और [illegible] विघ्न बाधाओं को दूर करने की प्रार्थना की है। कवि कहता है—कि जिसके वक्षस्थल पर मोतियों का बना हुआ हार [illegible] है, जो बुद्धि की [illegible] है, मूर्खों और पण्डितों दोनों को [illegible] करने वाली है, सफेद जिसका [illegible] है और जिसका शरीर [illegible] समुद्र से गहरा है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible]
[illegible]

अग्रेजा श्रुति कुंडल करि, करस्तुदीर उद्दारयं ॥
सोय पातु गनेश सेस सफल, पृथ्राज काव्य कृत ॥ २० ॥

शब्दार्थ—छ्यजा = सिर मे उत्पन्न हैं अर्थात् जो मस्तक काटने पर उप्पन्न हुए हैं अर्थात् गणेश जी, अलिभूराच्छादिता = भ्रमरो के समूह से आवृत्त, पया = पैरो में, भामिता = शोभायमान है, अग्रेजा श्रुति = कान के अग्र भाग में, कोय = सो वही, पृथ्राज = पृथ्वीराज विषयक ।

अनुवाद—प्रस्तुत पद मे गणेश जी की स्तुति की गई है और फिर कवि ने उनसे पृथ्वीराज विषयक काव्य की निर्विघ्न समाप्ति माँगी है । कवि का कथन है कि जो मस्तक काटने पर पैदा हुए हैं, जिनके मस्तक मे गजो के समान रस धारा प्रवाहित होती रहती है, जो भ्रमरो के समूह से आवृत हैं, जिनके वक्षस्थल पर गुंजाओ का हार शोभायमान है, जो गुणियो मे गुणी हैं, जिनके पैरो में झुंझा आभूषण शोभायमान है, जिन्होने कान के अग्र भाग की शोभा के लिए कुण्डल धारण कर रक्खा है, हाथी की सूंड के समान जिनका मस्तक है और तोद उठी हुई है ऐसे गणेश जी हमारी रक्षा करें तथा पृथ्वीराज विषयक काव्य प्रणयन मे लीन मेरी जितनी भी इच्छाएँ हैं उन सबको सफल करें ।

आसा महीव कव्वी । नव नव कित्तीय सग्रहं ग्रंथ ॥
सागर सरिस तरगी । बोहथ्थयं उक्तिय चलयं ॥ २१ ॥

शब्दार्थ—आसा = आशा, महीव = बहुत सारी, कित्तीय = कीर्ति ।

अनुवाद—कवि चद का कथन है कि मेरी इच्छा एक ऐसे वृहत् ग्रथ की रचना करने की है जिसमें नये नये राजाओ के चरित्र का वर्णन हो । जिसमे सागर के समान निरन्तर भावरूपी उर्मियां उठती रहे और सुन्दर युक्तियां एव उक्तियो रूपी जलयान जिसमें विचरण करें ।

काव्य समुद्र कवि चंद्र कृत । सुगति समप्पन ग्यान ।
राजनीति बोहिथ सुफल । पार उतारन यान ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—सुगति = मुक्ति ।

अनुवाद—कवि चंद का कथन है कि मैंने ऐसे काव्य-समुद्र का प्रणयन किया है जिसे पढ़कर मुक्ति प्राप्त की जा सकती है। इतना ही नहीं इसके पढ़ने से राजनीति विषयक ज्ञान की प्राप्ति भी हो जाएगी।

छंद प्रबंध कवित्त जति। साटक गाह दुहत्थ॥
लहु गुरु मंडित खंडियहि। पिंगल अमर भरत्थ॥ २३॥

शब्दार्थ—दुहत्थ = दोहा, लहु = लघु, पिंगल = पिंगल कृत छंद शास्त्र, अमर = अमरकोष, भरत्थ = भरत मुनि विरचित नाट्यशास्त्र।

अनुवाद—कवि का कथन है कि मैंने इस शास्त्र में छंद, प्रबंध, गाथा, साटक तथा दोहे आदि का प्रयोग किया है। यति, गति भी ठीक है। कवि अपने ग्रंथ की विशेषता बतलाते हुए कहता है कि मैंने इस शास्त्र के प्रणयन में पिंगल छंद शास्त्र, अमरकोष तथा भरत मुनि कृत नाट्य शास्त्र का पूर्णतया अनुसरण कर दिया है।

रति कवयौ न उघार। सलिल जिमि सिप्पि सिवालह॥
बरन बरन सोभत। हार चतुरंग विसालह॥
विमल कमल बानी विसाल। बानी वर नवन॥
[illegible] वयन विनोद। मोद मोहन मन हरनन॥
सुत [illegible] जुगति विचार विधि। वचन [illegible] कहयौ न कह॥
घटि बढ़ि मति कोई पढ़ै। तौ चंद दोस दिज्जो न वह॥ २४॥

शब्दार्थ—[illegible]

अनुवाद—कवि का कथन है कि [illegible]

का विशाल हार है। इस काव्य मे उस वाणी का आश्रय ग्रहण किया गया है जो अपनी पवित्रता, निर्मलता आदि गुणो के कारण महान् है। कवि पुनः कहता है कि इसकी उक्तियां, सुन्दर वचन आदि श्रोताओ के मन को प्रमुदित करने वाली हैं। अत कवि की प्रार्थना है कि युक्ति रहित और युक्ति सहित का विचार रखते हुए इसमें प्रवेश करिए और वयन (बोलचाल) भाषा में वर्णित छन्दो को ही पढ़िए। उमसे दूर पड़े हुए छन्दो को न पढ़ें तथा मात्रादि में घटा बढ़ी करके चद को दूषित न करें।

उक्ति धर्म विशालस्य। राजनीति नवं रसं॥
षट् भाषा पुराणं च। कुरान कथितं मया॥ २५॥

अनुवाद—कवि चद का कथन कि उसने अपने महाकाव्य मे धर्म सम्बन्धी तथ्यो का विशाल एव साङ्गोपाग विवेचन किया गया है, सुन्दर-सुन्दर उक्तियों का प्रतिपादन किया गया है, तथा राजनीति शास्त्र का विशद वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य में समस्त रसो का मनोरम प्रतिपादन किया गया है। इसमें छ. भाषाओ सस्कृत, पालि आदि में लिपिबद्ध किए गए ग्रथों की सार-वस्तु सगृहीत की गई है तथा विदेशियो के ग्रन्थ कुरान आदि के भी समुचित सिद्धान्तो का समावेश इसमे हो गया है।

चरन नीम अच्छिर सुरंग। लहु गुरु विधि मंडिय॥
सुर विकास जारी सुमुप्प। उक्ति रस गोरव निछंडिय॥
जुगति छोह विस्तरिय। सीटियन घाट सु बढ़िय॥
महि मडन मेधान। याहि मंडन जस सढ़िय॥
घन तर्क उतर्क वितर्क जति। चित्र रग करि अनुसरिय॥
विश्वकर्म कवि निर्मइय। रसिय सरम उधरिय॥ २६॥

शब्दार्थ—चरन=चरण, नीम+नींव, अच्छिर=अक्षर, सुरग=सुन्दर रगो से, जुगति=युगति, विस्तरिय=विस्तार करने वाली, महि=पृथ्वी; घन=अधिक, बहुत सारे।

अनुवाद—कवि का कथन है कि विश्वकर्मा के समान मैंने भी काव्य के

नवरस एवं सरस रस से पूर्ण काव्य-सरोवर का निर्माण किया है। जिस प्रकार से सरोवर निर्माण में सर्वप्रथम नींव की आवश्यकता होती है उसी प्रकार से कविता के चरण ही नींव हैं। इसके सुन्दर-सुन्दर वर्ण ही सुन्दर रंग-बिरंगे पत्थरों के समान हैं। इसी प्रकार से इस काव्य में लघु और गुरु का समुचित विधान है, संगीत शास्त्र के स्वरों को ठीक ठीक नियोजित किया गया है, सौन्दर्यमयी तथा उदात्त भावों को पूर्ण करने वाली ऐसी रसमयी ध्वनियों का संकलन किया गया है जो युवतियों में स्नेह का विस्तार करने वाली हैं। कवि का कथन है कि ये सब उक्तियाँ मेरे काव्य में इस प्रकार नियोजित हैं जिस प्रकार से सरोवर में सीढ़ियों का क्रमिक विधान होता है। कवि का पुनः कथन है कि मेरा यह काव्य समस्त पृथ्वी को अपनी शोभा से मण्डित करने वाला है। इतना ही नहीं इसके श्वेत वर्णों का यश ही समस्त संसार में फैला हुआ है। मेरे इस काव्य में बड़े तर्क-वितर्क हैं तथा तर्कातीत बातें भी दी गई हैं। जिस प्रकार से सरोवर में अनेक प्रकार की छोटी बड़ी लहरियाँ उठती हैं उसी प्रकार से मैंने इस काव्य में नाना प्रकार के भावों का अनुसरण किया है।

तर्क वितर्क उतर्क सु जातिय। राज सभा सुभ भासन भत्तिय॥
कवि आदर सादर बुध चाहीं। पढ़ि करि गुन रासौ निर्बाहीं॥ २७॥

शब्दार्थ—राजसभा = राजाओं की सभा, सुभ = शुभ, भासन = कहने योग्य।

अनुवाद—इस पद में कवि अपने ग्रन्थ के विषय-प्रतिपादन की विशेषता बताते हुए कहता है कि मेरा यह ग्रन्थ अनेक प्रकार की तर्क-वितर्क और तर्कातीत बातों से भरा हुआ है। मैंने इसमें उन सभी उक्तियों का संकलन किया है जो राजसभा में कहने योग्य हैं तथा जिनका विद्वान् आदर करते हैं। इस रासो को पढ़कर और गुन कर अर्थात् मनन करके इसका आदर करो।

धर्म्म अधर्म्म न बुद्धि विचारौ। तरुन नारि निय नेह निहारौ॥
होय प्रसन्न घन केलि प्रकासौ। [illegible] करौ गुन रासौ भासौ॥ २८॥

अनुवाद—यदि यह कहा जाय कि मेरे इस ग्रंथ का अध्ययन करने से धर्म, अधर्म और कामशास्त्र का ज्ञान हो जाएगा। [illegible]

जाएगा तथा समस्त कामशास्त्र और उसकी केलियाँ (क्रीडाएँ) भी आपके मन में प्रकाशित हो जाएँगी।

पारासर जो पुत्त विसासह। सतवती ग्रभ्भं गुर भासह॥
प्रव्व अठार सवा लष लष्पै। तौ भारथ गुर तत्त विसप्पै॥ २९॥

शब्दार्थ—पुत्त = पुत्र, विसासह = व्यास, सतवती = सत्यवती, ग्रभ्भ = गर्भ, प्रव्व = पर्व, अठार = अठारह, तत्त = तत्व, विसप्पै = विशेष।

अनुवाद—सत्यवती के गर्भ से उत्पन्न तथा पाराशर मुनि के पुत्र व्यास ने महाभारत मे जितनी विद्याओ को कहा है अर्थात् लिपिबद्ध किया है वे सभी मेरे इस काव्य के अनुशीलन से आपको प्राप्त हो जाएँगी।

रासौ वर बुद्धि। सुद्धि सो सव्व प्रमानिय॥
राजनीति पाइयै। ग्यान पाइयै सु जानिय॥
उकति जुगति पाइयै। अरथ घटि वढि उन मानिय॥
या समान गुन आप। देव नर नाग वखानिय॥
भविक्ष्त भूत ग्रतह गुनित। गुन त्रिकाल सरसइय॥
जो पढय तत्त रासौ सुगुर। कुमति मति नहिं दरसइय॥ ३०॥

शब्दार्थ—भविछन = भविष्यत, ग्रतह = वर्तमान, पढय = पढेगा।

अनुवाद—कवि अपनी विशेषताओ का उद्घाटन करते हुए कहता है कि मेरे इस रासो ग्रथ का तत्व बडा गौरवपूर्ण है और यदि तुम इसे किसी अच्छे गुरु से विना घट-बढ के अर्थात् जैसा है वैसा ही पढोगे तो तुम्हारी बुद्धि शुद्ध हो जाएगी, तमाम सिद्धियो का ज्ञान हो जाएगा, राजनीति का ज्ञान हो जाएगा, उक्तियो तथा युक्तियो की प्राप्ति हो जाएगी।

कवि पुन अपनी प्रशसा करते हुए कहता है कि मेरे इस ग्रन्थ की प्रशसा देवताओ, नागो, मनुष्यो अर्थात् सबने की है। इसमे वर्तमान, भूत, भविष्यत की सब बातें हैं। सत्, रज, तम आदि सब गुणो से यह मण्डित है और यदि आप किसी अच्छे गुरु से इसे पढ़ेंगे तो आपकी परिष्कृत अक्ल रह जाएगी, अपरिष्कृत नष्ट हो जाएगी।

कुमति मति दूखन तिहिं। विधि विना न श्रब्भान॥
तिहिं रासौ जु पवित्र गुन। बरनौं ग्रन्थ रसाल॥ ३१॥

शब्दार्थ—श्रब्भान = सुनेंगे।

अनुवाद—कवि का कथन है कि यद्यपि मैंने इस ग्रंथ का निर्माण रसपूर्ण शब्दों में किया है किन्तु जो व्यक्ति इसे ठीक ठीक नहीं सुनेंगे उनकी बुद्धि सुनने के बाद भी ठीक नहीं होगी।

सत्त सम्म नप लिप मरम। सकल आदि मुनि दिष्ष॥
घट बढ़ मत काऊ पढ़ो। मोहि दूखन न वसिष्ष॥ ३२॥

शब्दार्थ—सत्त = सात, सात, [illegible] वसिष्ष = विशिष्ट।

अनुवाद—कवि चंद का कथन है कि इस रासो में सात हजार से अधिक पद हैं तथा आदि मुनि वाल्मीकि ने जितने पदों का वर्णन अपने काव्य में किया है वे सब भी आपको इसमें दिखाई देंगे किन्तु यदि कोई घटा बढ़ा कर इसे पढ़ेगा और इस प्रकार से जो यदि रसानुभूति न होगी तो मुझे कोई विशिष्ट दूषण नहीं लगेगा।

प्रागं दरिन सगुना। उधारें वनन्धि पल्लवा॥
मन्दुक मन्दुक प्रमानं। चतुर श्री हारयं ग्रन्थं॥ ३३॥

शब्दार्थ—उधारं = उघाड़ने से, वनन्धि [illegible] पल्लवा = पल्लवक; जैसे = जिस प्रकार से।

अनुवाद—प्रस्तुत पद में कवि चन्द का कथन है कि [illegible] में पल्लवार्थ का कोई [illegible] नहीं है, [illegible] आदि [illegible] का प्रयोग ही मुख्य है।

[illegible] है कि जिस प्रकार से [illegible] द्वारा [illegible] पर [illegible] किए जाने से उसके [illegible] दिखाई [illegible], किन्तु [illegible] के [illegible] के [illegible] की [illegible] होती है।

अनगपाल पुत्री उभय। इक दीनी विजपाल ॥
इक दीनी सोमेस कौं। बीज ववन कलि काल ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—अनगपाल = अनगपाल, उभय = दो, विजपाल = विजयपाल (कन्नोज का राजा), सोमेस = सोमेश्वर, ववन = वपन, बोना।

अनुवाद—राजा अनगपाल के दो पुत्रियाँ थीं उनमें से एक कन्नोजेश्वर विजयपाल को और दूसरी सोमेश्वर को इस कलियुग में मृत्यु का बीज बोने के लिए दी।

एक नाम सुर सुंदरी। अनि वर कमला नाम ॥
दरसन सुर नर दुल्लही। मनों सु कलिका काम ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—अनि = अन्य, दुल्लही = दुर्लभ, कलिका = कलिकाएँ, काम = कामदेव।

अनुवाद—उनमें से एक का नाम सुर सुन्दरी और दूसरी का नाम कमला था। उनके दर्शन देवताओं और मनुष्यों को दुर्लभ थे। रूप सौंदर्य में वे मानो कामदेव की कलिकाएँ थीं।

ज दिन व्याहि सोमेस। त दिन अमरन मन उदित ॥
त दिन बीर बेताल। काल, कलहागम कुदित ॥
त दिन अवनि उमहीय। पुत्र इहि भार उतारै ॥
छत्र तेज छित छज्जि। देव दानव पुंतारे ॥
मानिक राइ अगनेस्स घर। पानि ग्रहन ज दिन थपे ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—ज = जिस, त = उस, अमरन = देवताओं के, उदित = उमगित, काल = मृत्यु, कलहागम = कलह का आगम हुआ, अगनेस = अनगपाल, दिन = दिन, थपे = हुआ।

अनुवाद—जिन दिन चौहान मानिक राय और अनगपाल के घरों में सम्बन्ध हुआ उसी दिन से देवताओं के मन प्रमुदित रहने लगे। मृत्यु और कलह का आगमन तथा उदय हुआ। पृथ्वी को आशा हो आई कि सोमेश्वर से उत्पन्न पुत्र मेरा भार उतारेगा और वह पृथ्वी पर प्रताप-युक्त छत्र धारण

करके देव और दानव रूपी वीरों का उद्धार करेगा। उसी दिन से वीरों के रोमांच भी सजाए जाने लगे और कायरों के हृदय भय से कम्पायमान होने लगे।

कितिक दिवस अंतरह। रहिय आधान रानि उर॥
दिन दिन कला बढ़त। मेघ ज्यों बढ़त भद्र धुर॥
चन्द्रकला सित पष्य। जेम बाढ़ंत दिन दिन॥
मुगधा जोबन चढ़त। मिलत भरतार पिनं पिन॥
बढ़ित अधान सुभ गातनह। जेम जलधि पुन्निम बढहि॥
हुलसंत हीय जे प्रीय त्रिय। जिम सुजोति जनिता बढहि॥ ३७॥

शब्दार्थ—कितिक = कितने, आधान = गर्भ, भद्र = भाद्रपद, सित पष्य = शुक्ल पक्ष, पिन पिन = क्षण-क्षण, पुन्निम = पूर्णिमा, त्रिय = स्त्रियां।

अनुवाद—कितने ही दिनों बाद रानी कमला के गर्भ रहा और दिनोंदिन उस सुन्दरी के मुख पर प्रभा बढ़ने लगी। गर्भ भार भी इस प्रकार बढ़ने लगा जैसे भाद्रपद का मेघ, शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की कला, पति के मिलने पर मुग्धा स्त्री का यौवन और पूर्णिमा के दिन समुद्र बढ़ता है। उस सुन्दरी के मुख पर जैसे जैसे ज्योति बढ़ने लगी, वैसे ही उसकी प्रिय सखियाँ हृदय में प्रसन्न होने लगीं।

'सोमेसर तोअर। घरनि। अनगपाल पुत्रीय॥
तिन सुपिथ्य गर्भ धरिव। दानव कुल छयीय॥ ३८॥

शब्दार्थ—तोअर = तोमर, घरनि = पत्नी, सुपिथ्य = पृथ्वीराज।

अनुवाद—सोमेश्वर की रानी, तोमर वंश के राजा अनंगपाल की कन्या ने अपने गर्भ में दानव कुल को उच्छिन्न करने वाले पृथ्वीराज को धारण किया।

प्रथम पुत्र सोमेस। नागपुर हुआ नरिंद॥
अंह मुदित सनमकन। पुरप संभर पुर परिंदय।

वहु जुद्ध रुद्ध कलि जुग्ग वर। भ्रित्त सित्त दैतन भिरन॥
कवि चंद दिली थह कारने। इह अपुव्व अवतार लिन॥ ४२॥

शब्दार्थ—पुहवै = पृथ्वीपति, जोति = ज्योतिषी, लिद्धि = दिखाया, चिहु = चारो ओर।

अनुवाद—पृथ्वीपति अनगपाल ने पृथ्वीराज के जन्म होने पर जगजोति व्यास को बुलाया और जन्म लग्न लिखवाया, उस नवजात के नामकरण को सुनकर पृथ्वी कपायमान होने लगी। वह पृथ्वीराज, कामदेव और शक्ति रूप में प्रकट हुआ। कस रूपी शत्रुओ को नष्ट करने के लिए वह वाराह और सूर्य में अवतरित दीख पड़ा। वह युद्धो में वहुतो को रौंदने वाला था वैसे ही इस कलि-युग में दैत्यो से भिडने योग्य उसके श्रेष्ठ सामत थे। कवि चन्द कहता है कि दिल्ली के भू-भाग को स्थिर रखने के लिए उसने अपूर्व अवतार लिया।

पुत्री पुत्र उछाह। दान मानह धन दिद्धिय॥
धाम धाम गावत धमारि। मनहु अहि मनि लिद्धिय॥
कनवज जैचन्द मात। भयौ सभरि वहनी सुत॥
तिन पवत दुज पठिय। थार जर चीर थपिय थुत॥
पहिराइ परीघह दान दुज। किय समाय सव्वन विवरि॥
दस दिवस रष्षि अप्पन अवर। अति उछाह आनंद करि॥ ४३॥

शब्दार्थ—दिद्धिय = दिया, धमारि = मगलगान, मनहु = मानो, अहि = सर्प, मनि = मणि, लिद्धिय = प्राप्त की हो, दुज = द्विज, पठिय = भेजा, थार = थाल, चीर = वस्त्र।

अनुवाद—दौहित्र के जन्म होने के उत्सव मे अनगपाल ने वहुत सा दान और सम्मान किया। प्रत्येक घर मे मगलगान होने लगे और प्रत्येक कोई ऐसे दीख पडने लगे मानो सर्प ने मणि प्राप्त की हो। जयचन्द की माता ने जब यह सुना कि उसकी वहिन के लडका हुआ है तो उसने थालियो में जर्गीन वस्त्रादि सजा कर द्विज को दिल्ली भेजा। उसने आकर राज्याश्रितो, गरीबो और द्विजो को वह पहरावी पहनाई और व्योरेवार सव को वह समर्पित की।

राजा अनगपाल ने भी विशेष उत्सव किया और अपने तथा पराए जो भी उत्सव में सम्मिलित हुए थे उनको दस दिन तक मेहमान रक्खा।

सुनि सोमेस बधाइ दिय। है गै चीर गुराव ॥
अति उछाह आनंद भरि। नृप मुष चढ्ढिय आव ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ—है=हय, घोड़ा, गै=गज, हाथी, नृप=नृप, आव=आभा।

अनुवाद—इस मांगलिक सूचना को सुनकर सोमेश्वर ने भी विशेष कीमती हाथी, घोडे, वस्त्रादि बधाई में दिए और प्रसन्न होकर इस उपलक्ष में विशेष उत्सव किया। इस अवसर पर राजा के मुख पर विशेष कांति दीख पडी।

तब बोलाय सोमेस वर। लोहानी अरु चन्द ॥
लै आवहुं अजमेर धर। पहौंते घरह सु इंद ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—लोहानी अरु चन्द=लोहानी तथा चन्द नामक दो सामंतो के नाम।

अनुवाद—फिर उस श्रेष्ठ राजा सोमेश्वर ने लोहानी और चन्द नामक सामंतो को बुला कर कहा कि हम सब चल कर रानी और कुमार को दिल्ली से अजमेर ले आवें। फिर कहते हैं कि वे श्रेष्ठ राजा अनगपाल के घर दिल्ली में पहुँच गए।

करि आनौ उच्छ्राह किय। चलिय राज अजमेर ॥
सहस बाजि है सुभर बर। सत्त सषी मनि मेर ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—बाजि=घोड़े, सुभर=सुभट, योद्धा, वर=श्रेष्ठ, सत्त=सत, सौ, सषी=सखी, मेर=सुमेर पर्वत।

अनुवाद—दिल्ली में विशेष उत्सव मनाया गया और गौना लेकर सोमेश्वर अजमेर को रवाना हुआ। साथ में एक सहस्त्र घोडे और श्रेष्ठ योधा थे तथा सौ सखियाँ मणि और सुमेरु के समान देदीप्यमान थी।

बरष बधै थिय बाल। पिष्ष्य बद्धै इक भासह ॥
घरी दीह पल पष्प। मास लष्षय न्रप तासह ॥

मनिगान कंठलाकठ। मद्धि केहरि नप मोहत ॥
घूघरवारे चिहुर। रुचिर वानी मन मोहत ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—वरप = वर्ष में, वधै = वढती है, विय—आयु, वाल = वालक; पिथ्थ = पृथ्वीराज, इक = एक, पप्प = पक्ष, तासहु = उसकी, मनिगन = मणियो का समूह, कठला = माला, मद्धि = मध्य, नप = नख, नाखून, चिहुर = वाल ।

अनुवाद—अन्य वालक जितने वर्ष मे वढते हैं उतना ही पृथ्वीराज एक माह में वढने लगा। जव वह एक वर्ष, एक माह, एक पक्ष, एक दिन, एक घडी और एक पल का हो गया तव शुभ मुहूर्त के साथ वाहर लाया गया। उसके गले में मणियो की माला पडी हुई थी जिसमें सिह के नाखून पिरोए गए थे। उसके घुघराले केश थे और मधुर सुन्दर वाणी से वह मन को मोहित कर लेता था।

केसर सु मडि सुभ भाल छवि। दसन जोति हीरा हरत ॥
नह तलप इक्क थहपिन रहत। हुलसि उठि उठि गिरत ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ—मडि = मण्डित, चर्चित, जोति = ज्योति, काति, हुलसि = उल्लास ।

अनुवाद—उसका उन्नत मस्तक केशर से चर्चित होने के कारण शोभा पा रहा था। दत पक्ति की आभा हीरो की काति को हरण करने वाली थी। वह एक क्षण भी एक स्थल पर नही रहता था। उल्लास के कारण वार-वार उठता गिरता था।

रज रंजित अजित नयन। घूठन डोलत भूमि ॥
लेत घलैया मात लपि। भरि कपोल मुप चूमि ॥ ४९ ॥

शब्दार्थ—घूंठन = घुटने, लपि = देखकर, मुप = मुख।

अनुवाद—सवको प्रसन्न रखने वाला शिशु (पृथ्वीराज) जिनके नेत्रो में काजल लगा हुआ था घुटनो के वल चलने लगा। ऐसी वाल लीला को देख कर उसकी माता कपोल और मुख को चूम चूम कर वलैया लेने लगी।

अंगुरिन लग्गि रगि चलत लाल। सर मद्धि उठतगज हंस बाल॥
मिलि बाल जाल कवि रही केलि। वढ़ि रही दूंद जनु बीज बेल॥५०॥

शब्दार्थ—सर=सरोवर, दूंद=द्वद, लग्गि=लगा कर।

अनुवाद—वह बालक अगुलियो को पृथ्वी पर लगा कर (घिसता हुआ) चल रहा था। तब ऐसा प्रतीत होता था मानो तालाब के बीच में हंस या हाथी का बच्चा चलता हो। कवि का कथन है कि वह बाल-समूह में अनेकानेक क्रीडाएँ कर रहा है और जिस प्रकार बेल का बीज पृथ्वी को फोड कर बढता है ऐसे ही वह बालक पृथ्वीराज शनै शनै बढ रहा है।

जनु रमत कमल ऋत कमल अग्ग। तप तेज वद्धि मुप पिक्ख नग्ग॥
सब देव तेज देपंत अग। उछार अंग अद्‌भुत प्रसंग॥५१॥

शब्दार्थ—देपत=देखते हैं, उछार=उछालता है।

अनुवाद—जैसे वसत ऋतु में विकसित कमलों के अग्र भाग पर शोभा छा जाती है वैसे ही उसके खिले हुए मुख मडल पर तेज बढने लगा। समस्त देवतागण उसके अङ्गो के तेज को देख रहे हैं, उत्साह के कारण अद्‌भुत ढग से वह अपने अगो को उछालता है।

सँग बाल बैठि भोजन करंत। परिवार वस्तु लै हठ धरंत।
आदर अदब्ब सथ्थीन देत। वगसीस करन पिय परम हेत॥ ५२॥

शब्दार्थ—सथ्थीन=साथियो को, वगसीस=वख्शीश।

अनुवाद—वह अपनी आयु के बालकों के साथ बैठ कर भोजन करता है तथा घर में पसद आने वाली वस्तु को लेने के लिए हठ करता है। वह मित्रों से विनय पूर्वक पेश आता है। वह अपने साथियो से आदर सहित बात करता है तथा भलाई चाहने वाले अर्थात् सेवको को वख्शीश देता है।

हैं हथ्थि चढत बढ्ढत आनंद। मन मौज चोज कवि पढ़त छंद॥
जिन हृदय कमल विग्राह हेत। छल छंद भेद तिन बुद्धि लेत॥५३॥

शब्दार्थ—हथ्थि=हाथी, तिन=उनकी।

अनुवाद—वह हाथी पर चढता है जिससे उसकी प्रसन्नता बढती है और मन के प्रमुदित होने पर वह कवियो के समान चमत्कारिक उक्तियाँ छद आदि

पढता है। वह अपने हृदय-कमल अर्थात् मन में साम, भेद, दण्ड आदि समस्त बातो को अच्छी तरह समझ लेता है।

पाइक्क संग कायक्क केलि। धरि धूप हथ्थ वाहत झेलि॥
गहि वग्ग हथ्थ फेरत तुरंत। नट नृत्य निपुन धावत कुरंग॥ ५४॥

शब्दार्थ—पाइक्क=पायक, सेवक, कायक्क=कायिक, केलि=क्रीडाएँ, कुरंग=मृग।

अनुवाद—वह सेवको के सग शारीरिक क्रीडाएँ करता है, हाथ से तलवार पकड कर घुमाता है और वार सहन कर लेता है, हाथ में लगाम ग्रहण करके घोडो को चलाता फिरता है। अभिनय, नृत्यादि कलाओ में चतुर है तथा चाल में हरिण के समान दौडता है।

जल केलि करत मिलि सजन संग। अल्लोल कलभ जनु सरित रंग॥
पकवांन पांन सुगंध पूर। मादक सुमोद सुप सुपन नूर॥५५॥

शब्दार्थ—कलभ=हाथी का बच्चा।

अनुवाद—वह सखियो के साथ मिलकर उसी प्रकार जल-क्रीडाएँ करता रहता है जिस प्रकार से हाथी का बच्चा जल में किल्लोल किया करता है। वह ऐसे स्वादिष्ट, सुन्दर और सुगंधित पदार्थों का आस्वादन करता है जो कि मस्त कर देने वाले, अत्यधिक प्रमुदित करने वाले, आनन्द एव सुन्दरता के मूल हैं।

पेलत अपेट संग श्वान डोर। वग्गु बधत पर गोस छोर॥
सुप धरिय पहर दिन पप्प मास। सोमेस सूर चित वढ़त आस॥ ५६॥

शब्दार्थ—पेलत=खेलत, अपेट=आखेट।

अनुवाद—वह शृङ्खला मे कुक्कुर को बाँध कर शिकार खेलता है तथा बागडोर को धनुष कोटि पर (कमान के लिए) बाँध लेता है। प्रत्येक घडी, पहर, दिन, पक्ष, मास उसे पोषित (बढते हुए) देखकर राजा सोमेश्वर के मन मे आशाएँ बढ रही हैं।

जिम राम कृष्ण सुख नंद गेह। संभरिय राय तिम दसा देह॥ ५७॥

शब्दार्थ—जिम=जिस प्रकार से, राय=राजा; दसा=दशा।

अनुवाद—(पृथ्वीराज को बढते हुए देखकर) अजमेर के राजा को वैसा ही आनन्द होता है जैसे बलराम और कृष्ण को बढते हुए देखकर नद को होता था।

कै दसरथ ग्रह राम। कै धाम वसुदेव कृष्ण वर॥
कै कलि कस्यप कूप। जानि उपज्यौ किरनाकर॥
कृष्ण ग्रेह कै काम। कै काम अगज जनु अनुरध॥
कै नल कस्यप अवतार। किधौं कौमार इश्व रुध॥
लपिन वतिस बहुतरि कला। बाल वेस पूरन सगुन॥
क्रीडत गिलोल जय लाल कर। तब मार जान चाँपक सुमन॥५८॥

शब्दार्थ—ग्रहे = गृहे, लपिन = लक्षण।

अनुवाद—दशरथ के राम, वसुदेव के कृष्ण, कश्यप के सूर्य, कृष्ण के काम, काम के अनिरुद्ध अथवा साक्षात नल कश्यप स्वरूप या शिव के कार्तिक स्वामी जैसा ही सोमेश्वर के यहाँ पृथ्वीराज ने जन्म लिया जो बत्तीस लक्षणों और बहत्तर कलाओं से युक्त था। जब वह हाथ में गिलोल लेकर क्रीडा करता था तो ऐसा दिखाई देता था मानो पुष्प-प्रत्यचा ग्रहण किए हुए साक्षात कामदेव हो।

छुटत गिलोला हथ्थ तैं। पारत चोट पयल्ल॥
कमल नयन जनु कामिनी। करत कटाछ छयल्ल॥ ५९॥

शब्दार्थ—हथ्थ = हाथ, छयल्ल = छैला।

अनुवाद—उनके हाथ की गिलोल (कंकर) हाथी पर इस प्रकार आघात करती थी मानो कोई पकंज-नैनि वाला अपने इच्छित छैला (प्रियतम) पर कटाक्ष कर रही हो।

कोइक दिन गुर राम पैं। पढी सु विद्या अप्प॥
चवदसु विद्या चतुर वर। लई सीप पट लिप्प॥ ६०॥

शब्दार्थ—कोइक = कुछ, चवदसु = चौदह, सीप = सीखना, पट = पट्टी; लिप्प = लिखना।

अनुवाद—उसने कुछ दिनो तक गुरु राम पुरोहित से विद्याध्यन किया और चौदह विद्याओ में दक्ष होकर पट्टी पर सुन्दर लिपि लिखना भी सीख लिया।

लिपि सिष्प कुअर प्रिथिराज राज। गुरु द्रोन पास सुत ध्रम्म ताज॥
ॐ नमो सिद्धि प्रथम पढ़ाय। सब भाव भेद अष्पर बताय॥६१॥

शब्दार्थ—ध्रम्म ताज=धर्मराज, अष्पर=अक्षर।

अनुवाद—राजकुमार पृथ्वीराज लिखना सीख कर बडे गुरु के पास गए जो धर्मराज थे, ठीक उसी प्रकार से जैसे पाण्डव-कौरव गुरु द्रोणाचार्य के पास विद्याभ्यास के लिए गए थे। उन्होने उसे 'ओम् नमो सिद्धि' का पाठ पढाया और फिर उसने उनसे गभीर ज्ञान सम्बन्धी बातें समझ ली।

दस पांच दिन्न अध्यन कीन। दस च्यारि सार सब सीष लीन॥
सीषी कला दस अट्ठ च्यारि। तिन नाम कहत कवि अग्ग सारि॥ ६२॥

शब्दार्थ—कीन=किया, दस च्यारि=दस+चार=चौदह, सीष लीन=सीख ली, दस अठ्ठ च्यरि=चौरासी, अग्ग सारि=अग्रसर, आगे।

अनुवाद—उसने दस पांच दिवस अर्थात् कुछ दिनो तक अध्ययन किया तथा चतुर्दश कलाओ का समस्त सार सीख लिया। उसने चौरासी अन्य विद्याएँ भी सीखी जिनका वर्णन कवि आगे करेगा।

गुरु गीत वाद वाजित्र नृत्य। सोचक सु वाच्य सविचार वृत्य॥
मनि मत्र जत्र वास्तुक विनोद। नैपथ विलास सुनि तत्त मोद॥ ६३॥

शब्दार्थ—वाद=वाद्य, सु वाच्य=सुन्दर बातें, वास्तुक=वास्तु कला, नैपथ=नैपथ्य।

अनुवाद—उसने गुरु से गीत, वाद्य, वाद-विवाद, नृत्य, सम्यक ढग से विचार करना, अच्छे वचन, विचार समन्वित बातें, मीनाकारी, मत्र-जत्र (तान्त्रिको की सिद्धियां) वस्तु कला, नैपथ्य-कार्य में दक्षता, उपहास की बातें आदि सीख ली।

साकुन्न कला क्रीड़न विसार। चित्रन सु जोग कवि चवत चारु ॥
कुसुमेष कला जुत इन्द्र जाल। सुचि क्रम विहार आहार लाल ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—शाकुन्न = शकुन, सु जोग = सयोग, कुसुमेष = कामदेव, इन्द्रजाल = जादूगरी।

अनुवाद—(कवि का कथन है कि) उसने शकुन विद्या, नाना प्रकार के खेल और सयोग से सुन्दर चित्र-विद्या में भी निपुणता प्राप्त कर ली। उसने कामदेव की कला, जादूगरी, अच्छे आहार, व्यवहार का क्रम भी सीख लिया।

सौभग प्रयोग सूगध वस्त। पुनरोक्त छंद वेदोक्त हस्त ॥
वानिज्ज विनय भाषित्त देस। आवद्ध जुद्ध निर्जु द्ध सेस ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—सूगध = सुगंधित, वस्त = वस्तु, पुनरोक्त = पुनरुक्ति आदि अलंकार, वेदोक्त छंद = वेद आदि में कहे गए छंद, वानिज्ज = वाणिज्य, भाषित्त देस = देश भाषाओं, जुद्ध = युद्ध।

अनुवाद—सुगंधित पदार्थों का सुन्दर प्रयोग करना, पुनरुक्ति आदि अलंकारों तथा वेदों में कहे गए छन्दों को भी उसने गृहण कर लिया। वाणिज्य-कला, नम्र आचरण, देश भाषाओं, लोगों को वश में करना, युद्ध करना, मैत्री स्थापित करना, आदि अवशिष्ट कलाओं को भी उसने सीख लिया।

चरनंत समय हस्ती तुरंग। नारी पुरुष्य पषी विचंग ॥
भू भू कटाछ सुल्लेप सत्य। वृप छद्म प्रश्ण उत्तर विजत्य ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—हस्ती = हाथी, तुरग = घोड़ा, पषी = पक्षी, विचग = विहग, भू = भ्रू, कटाछ = कटाक्ष, सुल्लेप = सुलेप।

अनुवाद—कवि का कथन है कि उसे हाथी, घोड़ा, स्त्री, पुरुष, पक्षी, विहग आदि को वश में करना आ गया। उसने भौंहों से कटाक्ष करना, सत्य, सुन्दर लेप, वृप विद्या, छद्म विद्या, प्रश्न करना, उत्तर देना आदि विद्याओं को सीख लिया।

सुभ सास्त्र कोक गनिका पटन्न। लिपतव्य चित्र कविता वचन्न ॥
व्याकरन्न कथा नाटक्क छंद। अभिधान दरस अलंकार यंद ॥ ६७ ॥

शब्दार्थ—सास्त्र = शास्त्र, व्याकन्न = व्याकरण, नाटक्क = नाटक, दरश = दर्शन शास्त्र।

अनुवाद—कवि का कथन है कि कहाँ तक गणना की जाए, उसे शुभ शास्त्र, लेखन-कला, चित्र-कला, छन्द आदि सभी आ गए। उसे व्याकरण, कथा, नाटक, नाम-शास्त्र, अलकार-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, छन्द-शास्त्र आदि सभी का ज्ञान हो गया।

घातक सु कर्म सुभ अर्थ जानि। सुरसरी कला वहुतरि वपान॥ ६८॥

शब्दार्थ—वहुतरि = बहत्तर, वपान = वखान, व्याख्या।

अनुवाद—कौन सा शुभ अथवा अशुभ कर्म है इसका ज्ञान भी उसको हो गया तथा देवताओ की बहत्तर कलाओ की व्याख्या भी उसने जान ली।

पाघ विराजत सीस पर। जरकस जोति निहाय॥
मनों मेर के सिषर पर। रह्यौ अहप्पति आय॥ ६९॥

शब्दार्थ—पाघ = पगडी, विराजत = शोभायमान, सीस = मस्तक; जरकस = जरी वस्त्र, जोति = ज्योति, चमक, मेर = मेरु पर्वत, सिषर = शिखर, अहप्पति = अहिपति, शेषनाग।

अनुवाद—प्रस्तुत पद में कवि पृथ्वीराज के सिर पर बधी हुई पगडी की शोभा का वर्णन करता हुआ कहता है कि चमकदार जरी वस्त्र की दीप्ति को भी फीकी कर देने वाली पगडी पृथ्वीराज के सिर पर बधी हुई थी और इस प्रकार प्रतीत होती थी जैसे सुमेरु पर्वत के ऊपर शेषनाग आकर बैठा हो।

ता पर तुररा सुभत अति। कहत सोम कवि नाथ॥
मनु सूरज के सीस पर। धिपन धर्‍यौ धनु हाथ॥ ७०॥

शब्दार्थ—सुभत = शोभायमान, धिपन = बृहस्पति।

अनुवाद—कवि चन्द्र का कथन है कि उनकी सिर की पगडी पर तुररा ऐसा प्रतीत होता था मानो सूर्य के शीश पर बृहस्पति ने हाथ से धनुष खींचा हो।

श्रवन विराजत स्वाति सुत। करत न बनै बषान ॥
मनु कमल पत्र अग्रज रहै। ओस उड्डुगन आन ॥ ७१ ॥

शब्दार्थ—स्वाति-सुत = मोती, श्रवन = कान।

अनुवाद—उनके कानों में मोती ऐसी शोभा दे रहे हैं कि वर्णन करते नहीं बनता। वे ऐसे प्रतीत होते हैं मानो कमल पत्र के अग्र भाग पर ओस बिंदुओं के रूप में तारे पड़े हैं।

कंठ माल मोतीन की। सोभत सोम विसाल ॥
मेरु सिषर पारस फिरत। जानि नछित्रन माल ॥ ७२ ॥

शब्दार्थ—सोम = शोभा।

अनुवाद—उनने विशाल मोतियों की जो माला अपने कंठ में धारण कर रक्खी है वह ऐसी प्रतीत होती है मानो सुमेरु पर्वत की चोटी पर पारस-मणि का स्पर्श है।

सिस भीने सुमयंक मुष। निपट विराजत नूर ॥
मनौं बीर उर काम के। उगे आनि अंकूर ॥ ७३ ॥

शब्दार्थ—सुमयंक = सुन्दर चन्द्रमा, मुष = मुख।

अनुवाद—उनके सुन्दर चन्द्रमुख पर जरा जरा निकली हुई श्मश्रु (मूछें) अपनी पूर्ण कांति सहित ऐसी प्रतीत होती हैं मानो कौमार्यावस्था में कामदेव के अंकुर निकल आए हैं।

समय इक निसि चंद। बाम बत्त बहि रस पाई ॥
दिल्ली ईस गुनेय। कित्ती कहो आदि अंताई ॥ ७४ ॥

शब्दार्थ—निसि = रात्रि, गुनेय = गुणों का।

अनुवाद—एक दिन रात्रि के समय चंद की पत्नी ने प्रेम से परिपूर्ण वार्ता के बढ़ जाने पर पति से दिल्लीश्वर के गुणों और कीर्ति का आद्योपान्त वर्णन करने के लिए आग्रह किया।

कह्यौ भांमि सौं कंत इमि। जो पूछे तन मोहि ॥
रसन वर्ग रसना सरस। अन्नि छिपाऊं तोहि ॥ ७५ ॥

शब्दार्थ—भामि = भामिनी, तत = तत्व, ब्रन्नि = वर्णन करके।

अनुवाद—अपनी पत्नी से पति ने इस प्रकार कहा कि यदि मुझ से समस्त तत्व की बात को सुनना चाहती हो तो मेरी वाणी से सम्पूर्ण रस से युक्त बातों को ध्यान से सुनो जिसका सागोपाग वर्णन करके तुझे दिखाता हूँ।

सुकी कहै सुक सभरौ, कही कथा प्रति प्रान।
पृथु भोरा भीमग पहु, किम हुअ वैर विनान॥ ७६॥

शब्दार्थ—पृथु = पृथ्वीराज।

अनुवाद—शुकी ने अपने प्राण प्रिय शुक से राजा पृथ्वीराज और भोर भीमग राजा से किस कारण से युद्ध हुआ, इस कथा को सुनाने के लिए आग्रह किया।

कुअरप्पन प्रथिराज। तपै तेजह सु महावर॥
सुकल वीजु दिन हुते। कला दिन चढत कलाकर॥
सकर आदि संक्रमन। किरन वाढ़ै किरनाकर॥
यो सोमेस कुँआर। जोति छिन छिन अति आगर॥
हय हथ्थि देत सकै न मन। पल पडन गढ गिरनधर।
चिहु ओर जोर दसहूँ दिसा। कीरति विस्तारि महिय पर॥ ७७॥

शब्दार्थ—सुकल = शुक्ल पक्ष, कलाकार = चन्द्रमा, मकर सक्रमन = मकर सक्राति, पल = खल, महिय = मही।

अनुवाद—प्रस्तुत पद में पृथ्वीराज का प्रशस्ति गायन है। कवि का कथन है कि बाल्यावस्था से ही राजा पृथ्वीराज तप और तेज से महा पराक्रमी के समान प्रकट हो रहा था। शुक्ल पक्ष मे जिस प्रकार चन्द्रमा की कलाएँ बढती है उसी प्रकार पृथ्वीराज की कलाएँ भी दिन प्रतिदिन बढती चली गई। जिस प्रकार मकर सक्राति के उपरान्त सूर्य की किरणो का तेज बढता चला जाता है उसी प्रकार सोमेश्वरकुमार पृथ्वीराज का ज्योति **समूह प्रतिक्षण** बढता ही चला गया। घोडे आदि का दान देने से उनके **मन में कोई शका** नहीं होती

थी। वह दुष्टों को दण्ड देने वाला था तथा दुर्गों को नष्ट कर देने में श्रेष्ठ था। उसका पराक्रम चारों ओर दशों दिशाओं में फैला हुआ था। उसका यश सम्पूर्ण पृथ्वी पर विस्तृत था।

भोरा भीम भुअंग। तपै गुज्जर धर आगर॥
है गै दल पायक्क। पग्गबल तेजह सागर॥
काका सारगदेव। देव जिमि तम बड़ाइय॥
तासु पुत्र परताप। सिंध सम दत्त सु भाइय॥
परतापसीह अरसीह बर। गोकुलदास गोविंद रज॥
हरसिंघ स्याम भगवान भर। कुल अरेह मुष नीर सज॥ ७८॥

शब्दार्थ—गुज्जर=गुजरात, गुर्जर, है=हय, घोडा, गै=गय, गज, पग्ग=खड्ग, प्रताप सीह=प्रतापसिंह, अरसीह=अरिसिंह, गोविंदरज=गोविंदराज, स्याम—स्यामसिंह, भगवान=भगवानसिंह।

अनुवाद—गुर्जर राजा भोरा भीम पृथ्वी पर तप की खान था तथा वह हाथी, घोडों और पदाति सेना से युक्त था, तलवार बल से युक्त और तेज का समुद्र था। उसका चाचा (काका) सारगदेव था। उसमें देवताओं की प्रशंसा के गुण थे। उसका पुत्र प्रतापसिंह था। प्रतापसिंह के उसके ही समान सात भाई थे—प्रतापसिंह, अरिसिंह, गोकुलदास, गोविंदराज, हरिसिंह, स्यामसिंह और भगवानसिंह। ये सिंह तुल्य थे और इनके मुख पर कांति शोभायमान रहती थी।

जोरावर जुरि जङ्गमति। भरे वथ्थ नभ गाज॥
हुकम स्वामि छुट्टत सु इस। मनों तीतर पै बाज॥ ७९॥

शब्दार्थ—हुकम=प्रबल, इस=इस प्रकार।

अनुवाद—उस राजा का आक्रमण प्रबल होता था और वह अपने शत्रु पर इस भयंकर गति से आक्रमण करता था जैसे तीतर के ऊपर बाज।

तिन पर तुट्टं बीज जों, जिन पर राज अरुट्ट।
राजनान समुद्द भरन, दई न रबहू पुट्ट॥ ८०।

शब्दार्थ—अरुट्ठ=कुपित, समुह=सम्मुख, पुट्ठ=पीठ।

अनुवाद—जिस पर राजा भोराभीम क्रोधित या कुपित होता था उस पर वह बिजली के समान टूट पडता था तथा राज्य के कार्य सम्मुख होने पर भी उसने कभी पीठ नही दिखाई थी।

सारंग दे सुरलोक गत, भौ प्रतापसी पाट।
सात भ्रात सेवा करैं, तपै तेज थिर थाट॥ ८१॥

शब्दार्थ—पाट=राजा।

अनुवाद—सारगदेव की मृत्यु होने पर प्रतापसिंह उसकी राजगद्दी पर बैठा। वे सातो भाई राजा की सेवा करते थे और वे सब ही सप्रताप, तपस्या-युक्त और आडम्बर सहित स्थिर रूप से अपने अपने स्थान पर स्थापित थे।

भोरा भीम भुआल के, कोई एक मेवात।
तिन उज्जारत देस कौं, परि पुकार नृप पास॥ ८२॥

शब्दार्थ—मेवात=मेवाती प्रदेश का, उज्जारत=उजाड रहा है।

अनुवाद—भूपति भोरा भीम के दरबार में प्रात काल यह सूचना पहुँची कि कोई मेवाती उसके देश को उजाड रहा है।

प्रात समै पूकार, आई नरिंदं भीम दरबार।
करि नीसान घुघाव, चढि राज साजि आतुरयं॥ ८३॥

शब्दार्थ—नरिंद=राजा, नीसान=नगाडा, घुघाव=चोट, आतुरय=शीघ्रता से।

अनुवाद—इस प्रकार की सूचना राजा भोरा भीम के दरबार में प्रात काल पहुँची। राजा ने नगाडो पर चोट करते हुए सेना को सुसज्जित कर शीघ्रता से चढाई की।

चालुक्कह गुज्जर धरा, ईस नेति किय भीम।
सो उम्मैं तिहु पुर सुवर, को चपै अरि सीम॥ ८४॥

शब्दार्थ—सीम=सीमा, तिहु=तीन।

अनुवाद—चालुक्य देश के राजा ने गुर्जर देश की भूमि पर चढाई की और उस पर स्वामित्व स्थापित किया। उस श्रेष्ठ की बराबरी त्रिलोक में कोई नही कर सकता था और कोई भी शत्रु उसकी सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सकता था।

चढ़ि चलन राज आवाज कीन। नीसान नद्द वाजे वजीन ॥
चिहु ओर भरनि छुट्टे तुरंग। सजि सिलह भाँति नाना अभग ॥ ८५ ।

शब्दार्थ—चिहु ओर = चारो ओर, भरनि = योद्धाओ के।

अनुवाद—राजा ने उच्च घोषणा के साथ आक्रमण किया और युद्ध क्षेत्र में बड़े जोर से नगाड़े बजने लगे। वह सेना भिन्न-भिन्न प्रकार के अस्त्रो से सुसज्जित थी और उनके घोड़े भी युद्ध क्षेत्र में छूट गए।

॥ घम धमकि धरनि धाने सुभग। गज्जिय अकास कै गहर गंग ॥
भय हूह हांक आतंक जोर। सह सुरन फेरि भेरीन घोर ॥ ८६ ॥

शब्दार्थ—गग = दुर्गम, घम-धमकि = घम-घम।

अनुवाद—पृथ्वी घम-घम के स्वर से भर गई और उसकी गर्जना आकाश और दुर्गम समुद्र तक सुनाई दी। उन्होने विकट स्वर से उनको (शत्रु को) खदेड़ दिया जिससे उनके मध्य बड़ा भयंकर आतंक व्याप्त हो गया तथा भेरी का भयंकर स्वर भी सब ओर सुनाई देने लगा।

उडि रेनु सेन मंढीग अकास। परि रोर सोर जहँ तहँ मवास ॥
धरि रोम मुच्छ मुररंत भीम। रस वीर वक्र सक्रोध हीम ॥ ८७ ॥

शब्दार्थ—रेनु = रेणु, धूल, हीम = हृदय।

अनुवाद—सेनाओ की परस्पर मुठभेड़ हो जाने के कारण प्रचुर मात्रा में धूल उठी जिससे गगन आच्छादित हो गया। जहाँ पर मेवान जाति के लोग थे वहाँ पर भय से मिश्रित शोर के फैल जाने के कारण भगदड़ मच गई। राजा भोला भीम क्रोधित होकर अपनी मूंछो को मरोड़ने लगे। वह हृदय में वीर रस के कारण भयंकर क्रोध से परिपूर्ण थे।

चंपी सु सीम अरियन सुजान । डरा सुदाम नृप सारत ताम ॥
जुररा सिकार तीतर बटेर । पेलत सरित तट भइ अबेर ॥ ८८ ॥

शब्दार्थ—जुररा = जुडा, पेलन = खेलते हुए ।

अनुवाद—वे तत्काल ही शत्रुओं की सीमा का अतिक्रमण कर गए और उन्होंने नदी के समीप जाकर ठिकाना डाला तथा वहाँ पर शिकार खेलते हुए उन्हें काफी देर हो गई ।

इहि समय ताम परतापसीह । लहु बंधु साथ अरसी अबीह ॥
ए हुते सकल बाहुर ते बेर । नय समझ आइ पेलत अबेर ॥ ८९ ॥

शब्दार्थ—लहु = लघु, बन्धु = भाई, अबीह = क्रूर, नय = नदी ।

अनुवाद—तब उस समय प्रतापसिंह अपने छोटे भाई अरिसिंह के साथ उनके पास आए । ये सब लोग काफी देर से मृगया के लिए गए हुए थे और इनको नदी के किनारे शिकार खेलते हुए बहुत समय हो गया था ।

गजराज नाम साहन सिंगार । सरितान मझ्झि वह पियै वारि ॥
सुनि सोर द्वान छुट्टे छँछार । जनु भूत भांति भय भीत भार ॥९०॥

शब्दार्थ—वारि = जल, छछार = मद ।

अनुवाद—वहीं एक साहन सिंगार नाम का हाथी नदी के मध्य में जल पी रहा था जो यह शोर सुन कर सारा मद भूल गया ।

जमुना कि जग्गि काली करार । सिर धूनि महावत दियौ डार ॥
गज एक वारि पीवंत दूरि । तिन पर सु तुट्टि जनु सिंघ चूरि ॥ ९१ ॥

शब्दार्थ—तुट्टि = टूटा, आक्रमण किया ।

अनुवाद—यमुना के दूसरे किनारे पर एक दूसरा हाथी जल पी रहा था जिसने कि अपने पीलवान को उठा कर पृथ्वी पर फेंक दिया । उन पर यह पहले वाला हाथी इस प्रकार से झपटा जिस प्रकार से क्रोधित के वेग में सिंह अचानक हाथी पर टूट पडता है ।

धरि पष पव्व जनु धप्पि धाय । भुज परयौ नभ्भ वद्दर सुमाय ॥
दिषि दुरप उनहि आवत आन । धुनि करि सु डारि उन पीलवान ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—पष=पख, धप्पि धाय=दौड कर ।

अनुवाद—इन लोगो ने उस हाथी को, जिसने पीलवान को जोर से उठा कर फेंका था इस प्रकार दौडकर आते हुए देखा जिस प्रकार प्राचीन काल में पर्वत अपने पखो सहित उडा करते थे तथा जिस प्रकार काले बादल आकाश में फैल जाते हैं ।

धायौ ति समुह साहन सिंगार । जनु बध जंभ उप्पर अपार ॥
कलपत पाइ जनु पवन आइ । हल हले पव्व जित तित बिठाई ॥ ६३ ॥

शब्दार्थ—जंभ=यम, उप्पर अपार=चारो तरफ फैल गए, पव्व=पर्वत ।

अनुवाद—साहन सिंगार नाम का हाथी सम्मुख दौड कर आया जैसे यम के बधन चारो ओर फैल गए । जिस प्रकार कल्प की समाप्ति के समय उन्नचास पवनें चल पडती हैं और उनसे हिलने के कारण पर्वत इधर उधर गिर पडते हैं ।

जम रूप दुःअ जनु जम दुवार । द्वय भ्रात बीच घेरे असार ॥
इक ओर वारि द्रह गहर गूल । इक जोर जोर बर उच्च कूल ॥ ६४ ॥

शब्दार्थ—असार=असवार, द्रहु=तालाब, उच=उच्च ।

अनुवाद—दुधारी तलवारो से युक्त दोनो घुडसवार भाईयों के एक ओर तो गहरी जलधारा थी और दूसरी ओर बहुत ऊंचा किनारा था तथा वे ऐसे प्रतीत होते थे जैसे विकराल रूप वाले यम के द्वारा बीच में ही फसा लिए गए हो ।

परताप सनमुष परयौ जाइ । डारत अश्व अभि रियौ घाइ ॥
बहि सीस परन दो हाथ करार । परबूज जांनि बिफरयौ विकार ॥ ६५ ॥

शब्दार्थ—सनमुष=सम्मुख, परबूज=खरबूज ।

अनुवाद—प्रतापसिंह साहन सिंगार हाथी के सम्मुख पड गया। हाथी ने उसके घोडे को मार दिया तब उसने हाथी पर तलवार से आघात किया। उसने हाथी के सिर पर तलवार चलाकर उसके इस प्रकार से टुकडे कर दिए मानो वह खरबूजा हो।

जंगनाथ हंडि जनु वट्टु दोइ। इह भांति कुंभ कुंभी न होइ॥
गज पर्‍यौ धरनि साहन सिंगार। किन्नो अकाम परताप पार॥ ९६॥

शब्दार्थ—जंगनाथ=युद्ध के स्वामी अर्थात् वीर प्रतापसिंह, हंडि=काटे जाने पर, वट्टु=मार्ग, कुंभ=हाथी, कुंभी=मस्तक।

अनुवाद—वीर प्रतापसिंह द्वारा खंडित साहन सिंगार नामक हाथी का गंडस्थल दो भागो में विभक्त होकर ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह हाथी का मस्तक न होकर दो मार्ग हो। जब वह साहन सिंगार नाम का हाथी पृथ्वी पर गिर पडा तो प्रतापसिंह ने उसका काम तमाम कर दिया।

अरसीह पुट्ठ जग धर्‍यौ देप। मनमुष्प क्रम्यौ सम सीह भेप॥
गज गही दौरि सिर पग्ग सुंड। दिय गुरज चीर द्वय हथ्थि मुण्ड॥ ९७॥
फट्यौति सीस भइ पंच फारि। गज डर्‍यौ जानि गिरिवर विसाल॥
सुनि वत्त राज भोरा सु भीम। पायौ अनंत दुप आप हीम॥ ९८॥

शब्दार्थ—क्रम्यौ=आक्रमण किया, सीह=सिंह; पग्ग=पगडी।

अनुवाद—अरिसिंह ने पीछे से दौडकर आते हुए दूसरे हाथी को देखा और उस पर सिंह के समान आक्रमण किया। जब हाथी ने दौडकर अरिसिंह के सिर की पगडी पकड कर खींची तब उसने दोनों हाथो से गदा को उठा कर उस हाथी के सिर पर वार किया जिससे उस हाथी का गंडस्थल फट कर पांच टुकडे हो गया। वह हाथी भूमि पर धडाके के साथ इस प्रकार गिर पडा जिस प्रकार से बडा पर्वत गिरता है। राजा भोरा भीम ने जब इस वार्ता को सुना तब उसने अपने हृदय मे अनन्त वेदना का अनुभव किया।

पह वाव कियौ नृप अप्प साम। तुम सो न हमहि चाकरह काम॥ ९९॥

अनुवाद—उसने (राजा भोरा भीम ने) उन दोनो को अपने सामने बुलाया और उनसे कह दिया कि तुम्हारे जैसे सेवको को सेवा में रखने की इच्छा नही है।

भा उभय अहँकार करि, हन्यौ सुवर गजराज।
दोस हमहि लग्यौ नहीं, आपहि कीन अकाज ॥ १०० ॥

अनुवाद—राजा भोरा भीम को यह भ्राति हो गई कि दोनो ने अभिमान के कारण अति श्रेष्ठ हाथियो को मार डाला है अत मेरे पर कोई दोष नही है, इन्होने अपने आप ही बुरा काम किया है।

सात भ्रात निज वात सुनि, भए अप्प चलचित्त।
प्रथीराज सुनि कुंअर ने, आप बुलाये हित्त ॥ १०१ ॥

शब्दार्थ—अप्प=आप ही, हित=प्रेम से।

अनुवाद—सातो भाइयो ने जब यह बात सुनी (उपर्युक्त) तब अपने हृदय मे बडे चिंतित हुए और चल पडे। कुमार पृथ्वीराज ने जब उनके सम्बन्ध में सुना तो उनको बडे प्रेम से अपने पास बुलाया।

दिए हथ्थ लिपि गाम पट, रहे वास घिर आनि।
चालुक चातुर वीर वर, जिन अन्त मुष पानि ॥ १०२ ॥

शब्दार्थ—गाम=ग्राम, पट=वस्त्र।

अनुवाद—पृथ्वीराज ने उन वीरो को जिनके मुख पर तेज विद्यमान था हाथी दिए, कई ग्राम उनके नाम कर दिए, उन्हे अमूल्य वस्त्र दिए और रहने के लिए घर दिए।

सम इक सोम कुमार, सम सार्मतन सूर सम।
सोम सीस भुअ भार, सो वैठे सुभ सुभा रचि ॥ १०३ ॥

शब्दार्थ—भुअ=भूमि, पृथ्वी।

अनुवाद—सोमवश के कुमार पृथ्वीराज जिनके सिर पर भूमि का भार

शोभायमान है ने एक वार शूर-वीरो और सामतो के साथ शुभ सभा का आयोजन किया।

रची सुभ सोम सभा प्रथिराज। विराजति मेरु जिसे भर साज ॥
भुजा सम कन्ह रचे चहुवान। तिनें मुछ राजत हैं मुद पान ॥ १०४ ॥

अनुवाद—सोम अवतम पृथ्वीराज ने शुभ सभा का आयोजन किया। वे सुसज्जित भटो के मध्य में सुमेरु पर्वत के समान शोभायमान हो रहे थे। उनके दक्षिण पार्श्व में कण्ह चौहान शोभा पा रहा था और उसके मुख की शोभा शमश्रु और पान बढा रहे थे।

जिनें चष कपै भर मान। कपे जनु मोरन अप्प विवांन ॥
रहै चष वारि सुरातन एम। जवा अन प्रात कियो सक जेम ॥ १०५ ॥

शब्दार्थ—अप्प=सर्प, सक=शुक्र अर्थात् इन्द्र।

अनुवाद—उसको (कण्ह चौहान को) देख कर बडी आन वाले भट उसी प्रकार कांपने लगते हैं जैसे कि मोर को देख कर सांप कांपने लगता है और भाग जाता है। (उस सभा के मध्य में) कण्ह चौहान उसी दीप्ति के साथ विराजमान है जिस दीप्ति के साथ इन्द्रादि देवताओ की सभा में अहोगत्र विद्यमान रहता है। और कण्ह के नेत्रो में यह दीप्ति उसी प्रकार देदीप्यमान थी जिस प्रकार मदिरापान करने वाले के नेत्रो मे अरुणिमा।

तहां वर चांवंड राइ राजत। जुध मधि चांवड रूप सजत ॥
नृसिंघ विराजत सिंघ जिसोह। विभीषन भाकत्र मास जिसोह ॥ १०६ ॥

शब्दार्थ—चावंड=चामुण्ड, राइ=राजा, राजत=शोभायमान, जुध=योद्धाओं के, मधि=मध्य में, सजत=शोभायमान थे।

अनुवाद—वही पर चामुण्ड राजा भी शोभायमान थे और योद्धाओ के के मध्य में उनका रूप चामुण्डा देवी के समान प्रतीत होता था। पृथ्वीराज की सभा मे कैलाश राम की सभा के विभीषण के समान प्रतीत हो रहे थे।

सबैं भर ओर उतथ्थ सुमंत। तिनं मधि पीथ कुआर रजत ॥
मनों सुकल पष बीज कौ चद। तिया रस राजत तारन वृन्द ॥ १०७ ॥

शब्दार्थ—पीथ कुआर=कुमार पृथ्वीराज, पप=पक्ष, तिया-रस=स्त्री का रस अर्थात् शृङ्गार रस, तारन-वृन्द=तरुणो के समूह में।

अनुवाद—कुमार पृथ्वीराज उन समस्त युवक भटो के मध्य में उसी प्रकार शोभायमान थे जिस प्रकार ने शुक्ल पक्ष में द्वितीया का चन्द्रमा तथा तरुण वृन्द (युवक-युवतियों) में शृङ्गार रस की वार्ता।

प्रतापसि सातउ भ्रात सरीस। प्रथी पति आइन माइय सीस॥
ति सोहत मानुस त संत मेर। किधौं सत सिंधु सुहंत उजेर॥ १०८॥

शब्दार्थ—ति=वे, मानुस=मनुष्य, सत=सप्त।

अनुवाद—प्रतापसिंह ने सातो भाइयों के साथ आकर पृथ्वीपति को नमस्कार किया। वे (सातो) ऐसे शोभित हो रहे थे मानो मानव रूप में सात सुमेरु पर्वत हो अथवा सप्त सागर अपनी परिपूर्णता के कारण शोभायमान हो रहे हों।

सनमुष कन्ह प्रतापसि आइ। ठई तिन बैठक साल सुभाइ॥
कहै भर भारथ चत्त स वांन। धरयौ प्रतापसि मुच्छन पांन॥ १०९॥

शब्दार्थ—पान=पाणि।

अनुवाद—कण्ह चौहान के समक्ष प्रतापसिंह आया और वही पर स्थिरता पूर्वक समीचीन ढंग से बैठ गया। उस समय चारण सुन्दर वाणी में युद्ध की वार्ता को कह रहा था। उसको सुनते ही प्रतापसिंह का हाथ अनायास मूछों पर चला गया।

लपी चहुआन सु कन्ह अपन। कढी असि तच्च असंप भपन॥
दई असि दौरि जनेउ उतारि। रही धर अद्ध उपंम विचारि॥ ११०॥

शब्दार्थ—असप भपन=असत्य भाषण करते हुए अर्थात् अनाप-शनाप बकते हुए, जनेउ उतारि=प्रहार का एक ढग।

अनुवाद—तब कण्ह चौहान की दृष्टि उस पर पड गई और तब उसने अनाप शनाप बकवाद करते हुए शीघ्रता से अपनी तलवार को निकाला और दौडकर जनेऊ आक्रमण किया।

मनों सब नागर सावु कटंत। इही जनु गंठि विचैं विच तत ॥
पर्यौ परताप प्रथी पर आप। भई भर मध्य सुजोर अमाप ॥ १११ ॥

शब्दार्थ—गंठि = गांठ।

अनुवाद—सरल है।

भई हूह मभझ्ह महल, पर्यौ भुंमि परताप ॥
हांक वीर बज्जे विषम, अरसी कुप्पौ आप ॥ ११२ ॥

शब्दार्थ—हाक = शोर करते हुए, कुप्पौ — क्रोधित हुआ।

अनुवाद—महल मे कोलाहल मच गया कि प्रतापसिंह मर कर धरणी पर धराशायी हो गया है। वीरों ने शोर करते हुए विकट आक्रमण किया तथा अरिसिंह मन में अति कुपित हुआ।

भई दूह परताप। पर्यौ दिष्यौ अरसी वर ॥
उठ्यौ कढ्ढि तरवारि। दई भुज कन्ह इवाम कर ॥
इक्क सीह वर ओर। गैर पष्पर गहि डारी ॥
एक अगनिता मद्धि। आनि कंपी धृत धारी ॥
चहुआन कन्ह अग्गै सुवर। ता पच्छै लोहन दग्यौ ॥
जाजुलित सत्त वर वीर मति। धीर वीर रस सौं छग्यो ॥ ११३ ॥

शब्दार्थ—सीह = सिर, पष्पर = कवच, जाजुलित = जाजवल्य।

अनुवाद—उस समय बड़ा शोर हुआ और श्रेष्ठ अरिसिंह ने जब प्रतापसिंह को गिरा देखा तब उठ कर अपनी तलवार निकाल कर कन्ह के बाएं हाथ पर प्रहार किया, एक वार सिर पर किया और दूसरा हाथ कवच पर फेंका। तदुपरात एक हाथ कुक्षि में मारा जिससे वह धैर्य धारण रखने वाला कन्ह काप गया। वे मानो भाई सात्विक प्रतिभा से प्रज्वलित थे तथा वीर योद्धा वीर रस से परिपूर्ण थे।

उट्ठि कुंवर प्रिथिराज लषि, नयौ महल निज मद्धि।
दै किवार मिलि थाट जुध, मच्चौ कलह मभ मद्धि ॥ ११४ ॥

शब्दार्थ—लषि = लखि, देखकर।

अनुवाद—इस भयकर युद्ध को देखकर कुमार पृथ्वीराज अपने महल के बीच में चला गया और किवाड लगा लिए तथा योद्धाओ मे आमने-सामने भेंट होने पर सभा के मध्य में ठाठ से युद्ध होने लगा।

कढ्ढी असि अरिसिंघ। नरसिंघस्य झारंयं सीसं॥
दई गुरज गुर अड्डं। वड गुज्जरं रंभ कदाई॥ ११५॥

शब्दार्थ—गुरज=गदा, कदाई=कधा।

अनुवाद—अरिसिंह ने तलवार निकाल कर नरसिंह के सिर को काट डाला। उसके उदर में गदा से भारी प्रहार किया और फिर गुर्जर देश के राजा के कधे पर आक्रमण किया।

दिपि चावडं। पिजि चावंडं॥
लोह चावडं। मन चावंडं॥ चावंड॥ ११६॥

शब्दार्थ—दिपि=दृश्य, पिजि=क्रोध से भर गया।

अनुवाद—चामुण्डराय ने जब इस प्रकार का दृश्य देखा तो वह क्रोध से भर गया। उसने तलवार उठा ली और उसका मन चामुण्डा देवी के समान भयकर हो गया।

वढ्ढिय जंग उत्तंग। जंग जनु दाह जु लग्गिय॥
परिय रोर राव रन। जुरिय जुध कन्ह अभिग्गिय॥
मारि टारि अरिसीह। हण्यौ गोयंद मेह गति॥
कढ्ढि हथ्थ जम दढ्ढ। दई चहुआन कृप घत॥
करि रोप कन्ह कर चंपि सिर। दो हथ्थन भेजी वढ्ढिय॥
निकसीय प्रान गोविंद उर। जोति भेदि जोतिह मिलिय॥ ११७॥

शब्दार्थ—जग=युद्ध, उत्तग=बड़े जोर मे, मेह=मेघ।

अनुवाद—उस समय लड़ाई बड़े जोर मे बढ़ी मानो युद्धाग्नि चारो ओर प्रज्वलित हो गई हो। बहुत सारे राजा कन्ह के साथ हो गए और लड़ाई बड़े जोर से हुई। उन्होंने अरिसिंह को मार कर गिरा दिया और गोविन्ददास को

वर्षा की गति के समान तेजी से भगा दिया। फिर उसने (कण्ह ने) चौहान की कुक्षि पर इतनी जोर से प्रहार किया मानो हाथ से यम की दाढ़ को निकाला हो। तब विपक्षी चौहान ने क्रुद्ध होकर कण्ह पर तलवार चलाई जो उसके सिर के ऊपर से निकल गई। तब कण्ह ने दोनों हाथों से विपक्षी पर प्रहार किया जिसके परिणामस्वरूप गोविन्दसिंह के प्राण निकल गए और उसकी आत्म-ज्योति परम-ज्योति में मिल गई।

कोलाहल दरबार भौ। सुनि चालुक अत सथ्थ ॥
धसिय पौरि गज मत्त सम। पुच्छत-पुच्छत कथ्थ ॥ ११८ ॥

शब्दार्थ—भौ = हुआ, अत = मृत्यु, सथ्थ = साथियों की, पौरि = दरवाजा, कथ्थ = कहानी।

अनुवाद—जब चालुक्य वंश के सात वीरों की मृत्यु एक साथ सुनी गई तब दरबार में शोर मच गया और उसी क्षण पुरवासी जन इस बात को पूछते पूछते उन्मत्त हाथी के समान महल में घुस आए।

छिछ रुधिर उट्टत गिरिय। परिय सत्र परिधारि ॥
दिपि चालुक अत तेह टग। कुलह बाजि जनु डारि ॥ ११९ ॥

शब्दार्थ—छिछ = छींटे, रन = स्थान।

अनुवाद—जिस प्रकार से पशुओं में खड्ग प्रहार से रक्त की धारा फूट पड़ती है उसी प्रकार से वहाँ भी रक्त की धारा बह रही थी। उस स्थान पर चालुक्य भाइयों को मरा पड़ा देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो बाज द्वारा कुलही चिड़ियाँ मारी गई हों।

संकर सिंघ कि छुट्टि। छुट्टि इन्द्रह कि गरुअ गज ॥
कि महिप छुट्टि मय मत्त। भरिय दीयौं कि दुष्ट कजि ॥
भौ कि हास रस रोस। मद्धि रावत्तर विरच्चिय ॥
कोलाहल वल कूक। मज्झ रावर हल मच्चिय ॥
चालुक्क पचास ताकथ्थ कथि। कोलाहल इन जानि घर ॥
छंडिय सयल बोहिथ नृपति। हनिग कन्ह सारंगहर ॥ १२० ॥

शब्दार्थ—सुकर=शृङ्खला, गरुम्र गज=बडा हाथी अर्थात् ऐरावत, महिष=भैंसा, मय मत्त=मदोन्मत्त, पवास=सेवक।

अनुवाद—जिस समय कन्ह ने समस्त नृप-समूह को छोड कर सारगदेव के उन पुत्रो को जिन्होंने राजा के रुष्ट होने के कारण अपनी मातृभूमि का त्याग कर दिया था मार डाला उस समय चारो ओर की सेनाओ तथा राजकुलो मे इतना शोर मचा मानो दुष्टो को भगाने के लिए शृङ्खला में बधा हुआ सिह छूटा हो अथवा इन्द्र का बडा हाथी ऐरावत छूटा हो या मदोन्मत्त कोई भैंसा छूटा हो या हास्य के बीच मे क्रोध उद्बुद्ध हो गया हो।

भर प्रताप दरबार के। द्वार परे मत मत्त॥
सुनत वत्त इह कहि परे। मनु निस तुट्टि नछत्त॥ १२१॥

शब्दार्थ—भर=भट, परे=परे, मतमत्त=मदमस्त, टुट्टि=टूट पडे हो, नछत्त=नक्षत्र।

अनुवाद—प्रतापसिह के मदमस्त भट दरबार के द्वार पर मरे हुए पडे हैं यह समाचार सुनकर लोग ऐसा कहते थे कि मानो रात्रि में तारे टूट पडे हो।

सार सिर मार विकरार रत्तन झरत।
परत धरनीय ढरैं जरकि जूपी॥
चक्क चहुवांन चालुक्क भूत उपर चर।
कोपियं कन्ह मनों काल रूपी॥ १२२॥

शब्दार्थ—विकरार= विकराल, कोपिय=क्रोध, सार=तलवार।

अनुवाद—जब तलवार की विकराल चोट सिर पर हुई तब रक्त स्राव होने लगा और शत्रु पृथ्वी पर कट-फट कर ढुलकने लगे जिससे कि यज्ञ स्तम्भ से बधे हुए बलिदान के पशु के समान झलक मिली और जिस समय क्रोधाभिभूत होकर कन्ह चालुक्य भाइयो पर प्रहार कर रहा था उस समय ऐसा प्रतीत होता था मानो यम कन्ह के रूप में साक्षात रूप धारण करके आ गया हो।

रुंड भकरुंड किय तुंड मुंडन रुरत।
वाहि सिर मार मनों मेह वुद्दे॥

कूह करि जूह संमूह को कोक हर।
रोस रिम राह जुम जीव छुट्टे ॥ १२३ ॥

शब्दार्थ—वुट्टं=बरसना, राह=राहु।

अनुवाद—उसने (कन्ह राजा ने) मुखो और घडो को अलग करके युद्ध-स्थली मे फैला दिया। तदुपरात उसकी तलवार इस प्रकार चलने लगी मानो वर्षा धारा बरस रही हो। कन्ह रूपी चन्द्रमा अपनी तलवार रूपी उजाले से योधागण रूपी अधकार को दूर कर रहा था। वह अपने प्रतिद्वन्दी की सेना का इस प्रकार हनन कर रहा था मानो कोई राहु आ गया हो और लोगो का प्राण हरण कर रहा हो।

पांनि करि पांनि अरि पांनि करनीय इक।
सीस अरि पारि सब पेत सीच्यौ॥
श्रात सोमेस नृपघात भञ्जन भरन।
पेत पयकार पय काल पीज्यौ॥ १२४॥

शब्दार्थ—पानि=पाणि, पानि=तलवार।

अनुवाद—(कन्ह ने) हाथ में तलवार धारण करके, हाथ से शत्रुओ को दबा कर, तलवार से रिपुओ के सिरो को भेद कर समस्त रणक्षेत्र को रक्त-सिंचित कर दिया।

हनिन निनायकं सेना, कथितं न च पूर्वयम्।
अयुद्धं चक्रत एषां, विना स्वामि रणे ध्रुवम्॥ १२५॥

शब्दार्थ—हनिन=मार कर, निनायक=बिना नायक को।

अनुवाद—सरल है।

नीठ विसासत अप्प भर, गह्यौ कन्ह चहुआंन।
गए ग्रेह लै सकल मिलि, प्रथीराज अकुलान॥ १२६॥

अनुवाद—कन्ह ने अनिच्छा से और बड़ी कठिनाई पूर्वक अपने योद्धाओ की बात स्वीकार की। तदुपरात वे योद्धा कन्ह चौहान को घेर-घार कर महल में ले गए जहाँ पृथ्वीराज व्याकुल बैठा हुआ था।

पारि भ्रित्त चालुक्क भर, मध अजमेर प्रमान।
सात भ्रात भीमह हते, रन जीत्यौ भर कांन ॥ १२७॥
वत्त सुनी तव कन्ह ने, पिज्यौ कुँअर प्रथिराज।
वैठि रहे तव तव निज सुघर, ऐदरवार समाज ॥ १२८ ॥

शब्दार्थ—वत्त = वार्ता, कान = कन्ह।

अनुवाद—चालुक्य के साथी एव भट अजमेर के मध्य में मारे गए और कन्ह ने राजा भोरा भीम के सातो भाइयो को मारकर युद्ध मे विजय प्राप्त की है जव यह वात पृथ्वीराज के पास पहुँची तव वह वहुत खीझा उस समय कन्ह अपना दरवार और समाज तू अपने पास ही रख कह कर अपने घर में वैठ रहा।

तीन दिवस अजमेर में, परी हट्ट हटनार।
हूह कोह वज्यौ विपम, लग्यौ सु भूत भुआर ॥ १२९ ॥

शब्दार्थ—हटनार = हडताल, कोह = क्रोध।

अनुवाद—तीन दिन तक अजमेर के वाजार में वरावर हडताल रही तथा कन्ह के क्रोध से पुरवासियो को ऐसा भय हुआ मानो राजा कन्ह को प्रेत लग गया हो।

मधि वाजार चलि रुधिर नदि, रुरत तुंड घन मुंड।
चरकि कन्ह चहुआंन करि, तिल तिल सम तन तुंड ॥ १३० ॥

शब्दार्थ—मधि = मध्य में।

अनुवाद—अजमेर के वाजारो मे रक्त की नदियाँ चल रही थीं क्योंकि कन्ह ने क्रोध मे आकर शत्रु-चालुक्यो के टुकडे-टुकडे कर दिए थे।

सात दिवस जव गए। कन्ह दरवार न आए॥
तव प्रथिराज कुआर। अप्प मनग ग्रह जाए॥
तुम ऐसी क्यों करी। अप्प सिर चढाइ सुकाई॥
कहिहैं सव चहुआंन। हने चालुक्क सुराई॥
आए ति चिपे अप्पन सुघर। सो रावर ऐसी करिय॥
इह दोस अप्प लग्यौ खरौ। वत्त वित्तरिय जग बुरिय॥ १३१ ॥

शब्दार्थ—अप्प = आप, मनए = मनाने के लिए, ग्रह = घर; सुकाई = कलक, वित्तरिय = फैलेगी, बुरिय = बुरी।

अनुवाद—जब सात दिन व्यतीत हो जाने पर भी कन्ह दरबार मे न पधारे उस समय कुंअर पृथ्वीराज स्वय उनको मनाने के लिए घर पर गए और कहा। आपने ऐसा कार्य क्यो किया जिसका कलक आपके सिर पर लग गया है। सब यही कहेगे कि चौहानो ने चालुक्य राजाओ को अकारण ही मारा है। वे तो अपने घर पर आपत्ति के मारे आए थे तिस पर आपने यह अत्याचार किया। यह दोष आप पर पूरा लग गया है और यह बुरी बात सारे संसार में फैल गई है।

कही कन्ह चहुआंन तब। मो बैठे कोइ आनि॥
सभा मद्धि संभरि अवर। मुच्छ धरै क्यौं पानि॥ १३२॥

शब्दार्थ—मो = मेरे, आनि = अन्य।

अनुवाद—तब कन्ह चौहान ने कहा कि सभर शासक के अतिरिक्त, मेरे रहते हुए, सभा के मध्य मे आकर मूंछ पर कोई हाथ कैसे रख सकता है।

करी अरज प्रथिराज वर। जौ मानौ इक कन्ह॥
सभा बुराई जौ मिटै। चप बांधि पट्ट रतन॥ १३३॥

शब्दार्थ—अरज = विनती; चप = चक्षु, पट्ट रतन = जडाऊ पट्टी।

अनुवाद—श्रेष्ठ पृथ्वीराज ने विनम्रतापूर्वक कन्ह से कहा कि यदि आप मेरी एक बात मानें तो इस प्रकार की बुरी घटना पुन नही घटेगी। अस्तु आपके चक्षुओं पर रत्न जटित पट्टी बांध दी जाए।

तब प्रथिराज विचार करि। चप आख्यौ हो पट्ट॥
बहुरि कोइ भर भोरही। धरत परै इह वट्ट॥ १३४॥

शब्दार्थ—बहुरि = फिर, वट्ट = मार्ग।

अनुवाद—तब पृथ्वीराज ने यह सोच समझ कर कि भूल से यदि कोई वीर मूंछ पर हाथ रख देगा तो फिर उसे इसी मार्ग से जाना पड़ेगा राजा कन्ह के नेत्रो पर पट्टी बांध दी।

मनी वत्त सुसत्य मन। लै जराव को पट्ट ॥
राजन कन्ह चप वधही। मनौं सिरी गज घट्ट ॥ १३५ ॥

शब्दार्थ—मनी = मान ली, वत्त = वात चीत, वार्ता।

अनुवाद—कण्ह ने इस वात को जव सच्चे मन से न्याय सगत मान लिया तव पृथ्वीराज ने जडाऊ पट्टी लेकर कण्ह के नेत्रो पर इस प्रकार वाध दी जैसे मस्त हाथी के सिरी वांध दी गई हो।

पाव लप्प परिमान। मोल किं मति ठहराइय ॥
तौल टक इक्कीस। नयन आकार सवारिय ॥
जरिय जवाहर मद्धि। अरक उद्योत प्रकासिय ॥
दिप्टि मडि देपत। दुअन उर अदर त्रासिय ॥
कंचन किलाव लगाय कल। पट्टी वधिय चंद भट ॥
तिहि वेर कन्ह चहुआंन चप। रूप प्रगटि अति पित्तिवर ॥१३६ ॥

शब्दार्थ—सवारिय = सवारने वाली थी, जरिय = जड दिया गया, अरक = सूर्य, दिप्टि—दृप्टि, दुअन = दोनो, किलाव = पख।

अनुवाद—इस पट्टी का मूल्य अनुमानत पाव लक्ष स्थिर किया गया। यह तौल में इक्कीस टक थी तथा नेत्रो के रूप को सवारने वाली थी। उसके वीच में जडा हुआ जवाहर हीरा ऐसा प्रतीत होता था मानो उदित सूर्य प्रकाशमान हुआ हो। इससे उसके नेत्रो की दृप्टि ढक गई और ऐसा होने पर दोनो के मन भय भीत हो रहे थे। सुवर्ण पख लगी पट्टी को उसके नेत्रो पर वांध दिया गया और चहुआन ने तीन वार उसे अपने नेत्रो से देखा। उसके मुख से क्षत्रियोचित दीप्ति प्रगट होने लगी।

पाटी वधिय कन्ह चप। इह ओपम करि अप्पि ॥
तन सरवर जल वीर रस। ओटा वांधि सुरप्पि ॥ १३७ ॥

शब्दार्थ—ओपम = उपमा।

अनुवाद—कन्ह के लोचनो पर पट्टी वधी देखकर कवि चन्द्र यह उपमा देते हैं कि मानो कन्ह का शरीर वीर रस रूपी जल से भरा हुआ सरोवर है

और उसकी सुरक्षा के लिए पट्टी के रूप में चारो ओर बांध बांध दिया गया है।

सो पट्टी निस दिन रहै। छोरि देइ द्वै ठाम॥
कै सिज्या बामा रमत। कै ज्जुट्ट सग्राम॥ १३८॥

शब्दार्थ—छोरि देइ = छोड करके, सिज्या = शय्या।

अनुवाद—वह पट्टी कण्ह के नेत्रो पर रात दिन रहती थी और केवल दो अवसरो पर ही खुलती थी। एक तो कामिनी के साथ शय्या पर काम-क्रीडा करते समय और दूसरे युद्ध के अवसर पर।

अति दुख मन्यौ भीम हिय। लिखि कग्गय चहुआंन॥
सत्त भ्रात मेरे हते। इहै बैर अप्पांन॥ १३९॥

शब्दार्थ—सत्त = सप्त, अप्पान = आप।

अनुवाद—राजा भोरा भीम ने हृदय मे बहुत दुख अनुभव किया। उसने पृथ्वीराज को लिखा कि मेरे सात भाइयों को आपने मारा है अत आप मेरे शत्रु हैं।

सुनिय राज चहुआन वर। दिय कागद फिरि तेह॥
जब तुम मगौ बैर वर। तब हम बैर सुदेह॥ १४०॥

शब्दार्थ—तेह = उसको ही, मगौ = मागते हो या ठानते हो।

अनुवाद—श्रेष्ठ चौहान राजा ने जब यह सुना तब उसने उस पत्र को उसको (दूत को) ही दे दिया और कहा कि जब तुम बैर ही ठानते हो तो यही सही, हमें स्वीकार है।

बचि कग्गद चालुक। रोस लग्यौ अयान कह॥
करो सेन सब एक। चलो अजमेर देस रह॥
तब कह्यौ वीर परधान। मास पावस्स रहे घर॥
करि कातिप घन कटक। हनैं चहुआंन सोमवर॥
सुनि राज अप्प मन्यौं सुहिय। भ्रत्तरु सब जन अवर नर॥
उपसम्म रोस चालुक्क नृप। पिन पिन चित्तय जेमथिर॥ १४१॥

शब्दार्थ—अयान = अज्ञान; मास-पावम्स = वर्षा ऋतु, कातिप = कातिक, उपसम्य = शान्त, पिन-पिन = क्षण-प्रतिक्षण, थिर = स्थिर।

अनुवाद—अज्ञानी भीम इस पत्र को पढकर क्रोध में आ गया और आज्ञा दी कि समस्त सेना को एकत्रित कर अजमेर देश पर अभियान करो। उस समय प्रधान वीर (मन्त्री) ने कहा कि वर्षा ऋतु में घर पर ही रहना चाहिए। कार्तिक के प्रारम्भ होते ही विशाल सेना सुसज्जित कर के प्रतिशोध के रूप मे सोमेश्वर को मारा जाए। इसे राजा भीम ने अपने हृदय में समझा तथा अन्य लोगो को भी यह बात अच्छी लगी। (इस प्रकार उस चतुर मन्त्री ने) प्रति क्षण बढ रहे चालुक्य भूपति के क्रोध को शात किया।

रहै राज अजमेर महि। सभरेस चहुआंन ॥
निसि दिन यौं क्रीला करै। ज्यौं अवतार सुकान्ह ॥ १४२ ॥

शब्दार्थ—क्रीला = क्रीडा।

अनुवाद—उन दिनो कुछ समय तक संभर देश के चौहान राजा (पृथ्वी राज) अजमेर में ही रहे तथा उस समय वह इस प्रकार क्रीडा करते थे जिस प्रकार भगवान ने कृष्णावतार के रूप में की थी।

संभरि वै चहुआंन कै, अरु गज्जन वै साह ॥
कहौं आदि किम वैर हुअ, अति उतकठ अथाह ॥ १४३ ॥

शब्दार्थ—गज्जन वैसाह = गजनी के अधिपति, किम = किस प्रकार।

अनुवाद—कवि चन्द्रबरदाई अपनी पत्नी से कहते हैं कि सभरपति चौहान और गजनीपति शाहबुद्दीन मे किस प्रकार वैर का सूत्रपात हुआ उसकी रुचिकर कथा का (मैं) वर्णन करता हूँ।

वंधव साहि सहाव। मीर हुस्सेन वान धर ॥
निज्ज वान सुप्रमान। वान नीसान वंध सुर ॥
गान तान सुज्जान। वाहु अज्जान वानवर ॥
भेव राज परवान। उग्र जस थान जुम्झ भर ॥

उद्दारचित्त दातार अति। तेग एक बंदै विसव ॥
सकेत साहि साहाव तिन। तेज अजे, जयमंत ग्रव ॥ १४४ ॥

शब्दार्थ—वान धर=धर्नुधारी, वाहु-अज्जान=अजान वाहु, लवी भुजा वाला, ग्रव=गर्व ।

अनुवाद—शाहवुद्दीन के बन्धु-बाधवो में मीर हुस्सेन नाम का धर्नुधारी सामत था । वह अपनी प्रतिज्ञा का भली प्रकार से पालन करने वाला, शब्द-भेदी बाण चलाने वाला, सगीतादि विषयो में दक्ष, लम्बी भुजा वाला, श्रेष्ठ वक्ता, राजनीति के अतर्गत भेद नीति में प्रवीण, यशधारियो मे श्रेष्ठ स्थान रखने वाला, अति वीरता से युद्ध करने वाला, उन्नत मन वाला, बडा दानी, दुर्धर्ष तलवार को धारण करने वाला, शाह शाहवुद्दीन भी जिसका ध्यान रखता था ऐसा वह वीर, तेजस्वी, प्रतापी, अजय तथा दूसरो के दर्प को दलने वाला था ।

इषिप वधु आचार। मीर उमराव जंपि जस ॥
एक पात्र साहाव। चित्ररेपा सु नाम तस ॥
रूप रंग रति अंग। गान परमान विचप्पन ॥
वीन जान वाजान। आनि वत्तीसह लच्छन ॥
दस पच वरष वाचा सुवच। सु प्रासाद साहाव अति ॥
आसिक्क ताम हूस्सेन हुअ। प्रीति परस्पर प्रान गति ॥ १४५ ॥

शब्दार्थ—जपि=कहना, साहाव=शाहवुद्दीन, तस=उसका, विच-प्पन=विचक्षण, सुप्रसाद=कृपा-पात्री, आसिक्क=आशिक ।

अनुवाद—उसके सुआचरण और वुद्धि को देखकर मीर और उमराव भी उसकी कीर्ति को कहते थे । शाहवुद्दीन के पास एक चित्र-रेखा नाम की वेश्या थी । उसका रूप-रग और अग रति सदृश्य थे तथा वह गान विद्या की बडी पडिता थी । वह वीणा वजाना जानती थी और वत्तीस-लक्षणो से युक्त थी । वह पन्द्रह वर्ष की आयु की थी तथा मधुर भाषिणी थी । वह शाहवुद्दीन की अति कृपा-पात्री थी । उनके प्रति हुस्सैन आशिक हुआ और दोनो मे परस्पर प्रेम दो देह और एक प्राण तुल्य हो गया ।

शब्दार्थ—श्रयान = श्रज्ञान, मास-पावस्स = वर्षा ऋतु, कातिप = कार्तिक, उपसम्य = शान्त, पिन-पिन = क्षण-प्रतिक्षण, थिर = स्थिर।

श्रनुवाद—श्रज्ञानी भीम इस पत्र को पढ़कर क्रोध में श्रा गया और श्राज्ञा दी कि समस्त सेना को एकत्रित कर श्रजमेर देश पर श्रभियान करो। उस समय प्रधान वीर (मंत्री) ने कहा कि वर्षा ऋतु मे घर पर ही रहना चाहिए। कार्तिक के प्रारम्भ होते ही विशाल सेना सुसज्जित कर के प्रतिशोध के रूप में सोमेश्वर को मारा जाए। इसे राजा भीम ने श्रपने हृदय में समझा तथा श्रन्य लोगो को भी यह बात श्रच्छी लगी। (इस प्रकार उस चतुर मंत्री ने) प्रति क्षण बढ रहे चालुक्य भूपति के क्रोध को शांत किया।

रहै राज श्रजमेर महि। सभरेस चहुश्रांन ॥
निसि दिन यौं क्रीला करै। ज्यौं श्रवतार सुकान्ह ॥ १४२ ॥

शब्दार्थ—क्रीला = क्रीडा।

श्रनुवाद—उन दिनो कुछ समय तक सभर देश के चौहान राजा (पृथ्वी राज) श्रजमेर में ही रहे तथा उस समय वह इस प्रकार क्रीडा करते थे जिस प्रकार भगवान ने कृष्णावतार के रूप मे की थी।

सभरि वै चहुश्रांन कै, श्ररु गज्जन वै साह ॥
कहौं श्रादि किम वैर हुश्र, श्रति उतकठ श्रथाह ॥ १४३ ॥

शब्दार्थ—गज्जन वैसाह = गजनी के श्रधिपति, किम = किस प्रकार।

श्रनुवाद—कवि चन्द्रवरदाई श्रपनी पत्नी से कहते हैं कि सभरपति चौहान श्रौर गजनीपति शाहबुद्दीन मे जिस प्रकार वैर का सूत्रपात हुश्रा उसकी रुचिकर कथा का (मैं) वर्णन करता हूँ।

षषष साहि सहाव। मीर हुस्सेन षान धर ॥
निज्ज थान सुप्रमान। षान नीसान वधै सुर ॥
गान तान सुज्जान। थाहु श्रज्ञान षानवर ॥
भेय राज परवान। उग्र जस थान जुमभ्क भर ॥

उद्दारचित्त दातार अति। तेग एक वट्टै विसव ॥
संकेत साहि साहाव तिन। तेज अजै, जयमत ग्रव ॥ १४४ ॥

शब्दार्थ—वान धर = धर्नुवारी, वाहु-अज्जान = अजान वाहु, लवी भुजा वाला, ग्रव = गर्व।

अनुवाद—शाहवुद्दीन के वन्धु-वाधवो में मीर हुस्सेन नाम का धर्नुधारी सामत था। वह अपनी प्रतिज्ञा का भली प्रकार से पालन करने वाला, शब्द-भेदी वाण चलाने वाला, सगीतादि विपयो में दक्ष, लम्बी भुजा वाला, श्रेष्ठ वक्ता, राजनीति के अतर्गत भेद नीति मे प्रवीण, यशधारियो में श्रेष्ठ स्थान रखने वाला, अति वीरता से युद्ध करने वाला, उन्नत मन वाला, वड़ा दानी, दुर्धर्ष तलवार को धारण करने वाला, शाह शाहवुद्दीन भी जिसका ध्यान रखता था ऐसा वह वीर, तेजस्वी, प्रतापी, अजय तथा दूसरो के दर्प को दलने वाला था।

इषिप वधु आचार। मीर उमराव जंपि जस ॥
एक पात्र साहाव। चित्ररेपा सु नाम तस ॥
रूप रंग रति अग। गान परमान विचप्पन ॥
वीन जान वाजान। आनि वत्तीसह लच्छन ॥
दस पंच वरष वाचा सुवच। सु प्रासाद साहाव अति ॥
आसिक्क ताम हूस्सेन हुअ। प्रीति परस्पर प्रान गति ॥ १४५ ॥

शब्दार्थ—जपि = कहना, साहाव = शाहवुद्दीन, वन = उसका, विच-प्पन = विचक्षण, सुप्रसाद = कृपा-पात्री, आसिक्क = आशिक।

अनुवाद—उसके सुआचरण और वुद्धि को देखकर मीर और उमराव भी उसकी कीर्ति को कहते थे। शाहवुद्दीन के पास एक चित्र-रेखा नाम की वेश्या थी। उसका रूप-रग और अग रवि सदृश्य थे तथा वह गान विद्या की वड़ी पण्डिता थी। वह वीणा वजाना जानती थी और वत्तीस-लक्षणो से युक्त थी। वह पन्द्रह वर्ष की आयु की थी तथा मधुर भाषिणी थी। वह शाहवुद्दीन की अति कृपा-पात्री थी। उसके प्रति हुस्सैन आशिक हुआ और दोनो में परस्पर प्रेम दो देह और एक प्राण तुल्य हो गया।

एक सुदिन सुविहांन । साह हुस्सेन सुवुल्लिग ॥
वे काफर आतस्स उतंग । दह दिसि नह डुल्लिग ॥
पैसंगी पासग । लष्प लष्पां नलवाही ॥
साइं सौं संग्राम । हक्कि हैवर गुरदाही ॥
गर्दन गुराव महि महि मपां । पां पवास अप्पिय घाह ॥
अन हल्ल नाल लभ्भय रवन । करौं तुच्छ तुभ्भी वरह ॥ १४६ ॥

शब्दार्थ—सुविहान = प्रात काल, सुवुल्लिग = बुलवा कर, नलवाही = अनलवाही, आग लगा देने वाली ।

अनुवाद—एक दिन प्रात काल के समय शाहबुद्दीन ने हुस्सैन को बुलाया और कहा कि नीच वही है जिसमें कामाग्नि प्रचण्ड हो और जो इसके वशीभूत होकर उन्मत्त हुआ-सा इधर-उधर घूमता फिरता है । मैं भविष्यवाणी करता हूँ कि जो स्वामी की प्रेमिका से सम्बन्ध रखता है, वह प्रेमिका लाखो में आग लगा देती है । अत तेरा भी स्वामी से युद्ध होगा और घोडे बढा कर तुझे घेर लिया जाएगा । यह बात बडी अकड वाले महिम खाँ और खवास खाँ के घर पर आकर हुस्सैन से कही और यह भी कहा कि यह रमणी जिसको तूने प्राप्त किया है निश्चय ही तुम्हारी अटल मृत्यु का रूप है । इतना ही नही यदि तू इस पर आसक्त रहा तो मैं तेरी श्रेष्ठ पदवी को भी नीचा करूँगा ।

सुनिअ बैन साहाब तव । प्रीत न छुडी वाम ॥
कोपि कह्यौ सुरतान तव । हनौ कि छडौ ग्रांम ॥ १४७ ॥

शब्दार्थ—वाम = वामा, हनौ = मारा जाएगा, छडौ ग्राम = ग्राम को छोड कर चला जा ।

अनुवाद—शाहबुद्दीन के इन वचनों को हुस्सैन ने सुना पर उसने उस स्त्री से प्रेम नही छोडा । तब सुल्तान ने क्रोधित होकर कहा कि या तो वह मातृ-भूमि को छोड कर चला जाए अन्यथा मारा जाएगा ।

सुनय वत्त हुस्सेन । सेन अप्पन साधारिय ॥
छंडि नयर निस्संक । मक मनन्साह नमारिय ॥

निसा जाम इक आदि । लई सो पात्र परम गुन ॥
तरुनि पुत्र परिवार । सज्जि सब साज सुअप्पन ॥
परिगह सु अप्प अग्गैं करिय । षांन षांन बधी सिलह ॥
संचर्‍यौ नैर नागौर इह । तजिय देस निज गठ ग्रह ॥ १४८ ॥

शब्दार्थ—साधारिय=तैयार कर लिया, नयर=नगर, सिलह=कवच, गठ=गांठ ।

अनुवाद—जब उसने हुस्सैन की इस बात को सुना तो अपनी सेना को तैयार कर लिया और निर्भय होकर गजनी का परित्याग कर दिया । उस नासिरुद्दीन ने जो मन मे शाहबुद्दीन के भय से शकित था अगली एक पहर रात बीत जाने पर उस परम गुणवती वैश्या, अपनी पत्नी तथा कुटुम्ब को लेकर, सब प्रकार के आयुधो से सुसज्जित होकर कवच धारण किया तथा अपने अग-रक्षको तथा साथियो सहित आगे चला । उसने शाह के साथ शत्रुता की दृढ गांठ बांध कर, अपनी मातृभूमि को त्याग कर नागौर नगर में प्रवेश किया ।

लै परिगह हुस्सेन गय । दिसि प्रिथिराज नरिंद ॥
संभरि वै सभारि कैं । मनु आयौ ग्रह दंद ॥ १४९ ॥

अनुवाद—मीर हुस्सेन अपने अगरक्षको को साथ लिए हुए पृथ्वीराज की ओर आया । यह जानकर सभरपति ने समझ लिया कि मानो यह गृह मे साक्षात विघ्नस्वरूप होकर ही आया है ।

भोजन्न भष्षे विविध वर । बहु आदर विधि कीन ॥
मान महातम रष्षि रज । राज उभय हय दीन ॥ १५० ॥

अनुवाद—विविध प्रकार के खाने योग्य श्रेष्ठ व्यञ्जनो को पहुँचा कर उसका भली प्रकार से आदर सत्कार किया और उसे वीरो में विशेष मान कर राजा ने प्रेमपूर्वक दो घोडे प्रदान किए ।

आपेटक चहुआंन । पास हुस्सेन संपत्तौ ॥
चार आइ चहुआंन । भाइ घन ताहि दियत्तौ ॥

नीति राव कुटवाल। तास ग्रह राज सु अप्पिय॥
वर कैथल हांसि हिंसार। राजपट्टो दै थप्पिय॥
इह चरित देपि सब दूत तब। जाइ संपते साहि पर॥
चरवर चरित जुग्गिनि पुरह। कहिय वत्त मैं मुष्पधर॥ १५१॥

शब्दार्थ—आपेटक=आखेट करते हुए, वार=द्वार, कुटवाल=कोतवाल, दर=दरवार, थप्पिय=स्थापित किया।

अनुवाद—शिकार खेलते हुए चौहान राजा के समीप हुस्सेन पहुँच गया। चौहान राजा ने द्वार पर आकर उससे बडे भाई-चारे का सा व्यवहार किया, राजा ने उसके साथ कोतवाल की नीति से आचरण किया। पृथ्वीराज ने अपने राज्य के कुछ भाग को उसके प्रति देकर उसे कृतार्थ किया। श्रेष्ठ पृथ्वीराज ने उसे कैथल, हांसि, हिसार आदि के राज्य को देकर विठा दिया। जब इस प्रकार के व्यवहार को सब दूतो ने देखा तब वह शाहवुद्दीन के दरवार में पहुँचे और दिल्ली के राजा पृथ्वीराज के आश्रय में हुस्सेन को जो वैभव प्राप्त हुआ उसको उन्होने शाहवुद्दीन के सन्मुख अपने मुख से कह सुनाया।

संभरिय वत्त साहावदीन। उच्चरिय वैन अति कोप कीन॥
मुक्कलौं इत्त चहुआन पास। कढ्ढो हुसैन जो जीव आस॥ १५२॥

शब्दार्थ—कढ्ढो=निकाल दो, जीव=प्राण, आस=आशा।

अनुवाद—यहाँ से छूट कर, चौहान के पास पहुँच कर हुसैन ने ऐश्वर्य प्राप्त किया। जब यह वात शाहवुद्दीन ने सुनी तव वह अति क्रोध मे आकर वोला कि यह वात चौहान के पास पहुँचा दो कि यदि उसे (पृथ्वीराज को) अपने प्राणो का मोह है तो उसे (हुसैन को) अपने देश मे निकाल दे।

वोलयौ षांन तातार तब्ब। संजाव षांन उमराव सब्ब॥
पुच्छी सु वत्त किय इत्त सार। थप्पी सु वत्त पुरसान वार॥ १५३॥

शब्दार्थ—षान तातार=तातार खाँ, पुरसान=खुरसान।

अनुवाद—तव उसने तातार खाँ और सब श्रेष्ठ उमरावो को बुलाया और

उनसे सलाह ली। तब खुरसान ने (शाहबुद्दीन से सारी बात सुनकर) यह निष्कर्ष निकाला—

आरब्ब सेष लीनौ बुझाइ। वैब्रद्ध ब्रद्ध बुद्धी सुनाइ ॥
वछै सुपेम सक लेहिं साहि। लज्जी अनंत आदब्ब थाहि ॥ १५४ ॥

शब्दार्थ—सेष = शेख, वैब्रद्ध = वयोवृद्ध, बुद्धी = ज्ञान, लज्जी = प्रिया।

अनुवाद—उसने अरब शेख को बुलाया जो कि आयु और ज्ञान में वयोवृद्ध समझा जाता था। सब उसको प्रेमपूर्वक चाहते तथा उससे सलाह लेते थे। उसकी प्रिया के प्रति भी लोगों का अनंत आदर भाव था।

उच्चर्‌यौ बैन साहाब भास। आरब्ब जाहु चहुआंन पास ॥
अप्पै जु पात्र हुस्सेन जाम। लै आउ सम्म हुसेन ताम ॥ १५५ ॥

शब्दार्थ—अप्पै जु पात्र = अपनी जो वेश्या, सम्म = साथ, ताम = उसको।

अनुवाद—शाहबुद्दीन स्पष्ट वाणी में बोला कि अरब तुम चौहान के पास जाओ और अपनी जो वेश्या हुस्सेन के अधिकार में है उसको हुस्सेन के साथ ले आओ।

मुक्कों सुगुनह कीनौ पसाय। मैं दीन पच्छ करि पिमा दाव ॥
छंडै न पात्र हुस्सेन ग्रब्ब। चहुआंन मिलै सामंत सब्ब ॥ १५६ ॥

शब्दार्थ—पच्छकरि = पक्ष करके, पिमा = क्षमा, ग्रब्ब = गर्व करके।

अनुवाद—मैं हुस्सेन को अपने समान मान कर आदर पूर्वक छोड दूंगा। उसका पक्ष लेकर एव उस पर कृपा करके मैं उसको क्षमा प्रदान कर दूंगा। यदि हुस्सेन घमड करे और उस वेश्या को भी न छोडे तब चौहान राजा तथा उसके समस्त सामतो से मेरे ये वचन कहना—

जंपियौ वयन चहुआंन माइ। कढ्ढौ हुसेन नागौर थाइ ॥
अब्जीज पांव तुम सन्च उन्च। लिष्यौ सु पत्र हम परम रुच्च ॥ १५७ ॥

शब्दार्थ—अब्जीज पाव = अजीज खाँ, सन्च उन्च = सम्मुख बताओ, लिप्यौ = लिखो, रुच्च = रुचिकर।

अनुवाद—चौहान के सम्मुख जाकर यह कहना कि नागौर से हुस्सैन को निकाल बाहर करे। अजीज खां तुम इस सम्बन्ध में ठीक-ठीक बताओ और हमारी ओर से एक ऐसा पत्र लिखो जो हमे अतीव रुचिकर हो।

कहौ हुसेन तुम देस अंत। बछौ जो पेम मानो सुमंत ॥
रष्या हुसेन जो असु परेस। चतुरंग सेन सज्जौं विसेस ॥ १५८ ॥

शब्दार्थ—मानो = मान लो, सुमत = सुपरामर्श।

अनुवाद—तुम हुस्सैन को अपनी सीमा से निकाल दो। यदि हमारा प्रेम व्यवहार चाहते हो तो हमारा यह सद्परामर्श मान लो और यदि हुस्सैन को रखकर उसके प्राणो की रक्षा करने के इच्छुक हो तो हम चतुरगिणी सेना को सजाकर तुम्हारे ऊपर आक्रमण करेंगे।

भजौं सुनैर नागौर देस। जीवत वदि बधौ नरेस ॥
सामत सूर सब करौं अत। बधौं सुबंध सा तरुनि कत ॥ १५९ ॥

शब्दार्थ—सुनैर = सुन्दर नगर, जीवत = जीवित।

अनुवाद—सुन्दर नागौर नगर को नष्ट कर देंगे तथा वहाँ के राजा को जीवित पकड कर कैद कर लेंगे, तुम्हारे समस्त वीरो और सामतो को मौत के घाट उतार देंगे। तुम्हारे देश के नर-नारियो, निवासियो आदि को बांध कर मार डालेंगे।

उच्चरि गुमान तन वत्त थूल। सपेप कहैं मानौं स मूल ॥
तुम जाउ सिघ्र नागौर ठाम। मति करौ एक पिन घर विश्राम ॥ १६० ॥

शब्दार्थ—सपेप = सक्षेप, सिघ्र = शीघ्र।

अनुवाद—हमने स्पष्ट रूप से 'अभिमान युक्त मोटी-मोटी बातो का सार समझा दिया है अत तुम विना एक पल भी विश्राम किए नागौर नगर को जाओ और हमारा सदेश कहो।

से तीन दीन असवार सथ्थ। आरुहन दीन नरयान रथ्थ ॥
सचर्‍यो सेख आरब्भ राह। दो पुप्प पत्त नागौर थाह ॥ १६१ ॥

शब्दार्थ—सै = सौ, पप्प = पक्ष ।

अनुवाद—शाह ने उसके साथ तीन सौ घुड सवार कर दिए तथा चढ़ने के लिए (सवारी के लिए) रथ दिए। शेख आरब्ब नागौर नगर के मार्ग पर चल दिया और नागौर नगर पहुँचने में उसे दो पक्ष से अधिक लग गए।

गय आरब नागौर धर। मिल्यौ साह हुसेन ॥
भोजन भष्य सुभाव किय। विवध प्रसन्निय वैंन ॥ १६२ ॥

शब्दार्थ—भष्य = भक्ष, खिलाया।

अनुवाद—अरब नागौर देश मे पहुँचा और शाह हुसेन से मिला। उसने अरब को प्रेम से भोजन खिलाया तथा सद्भाव एव प्रसन्नता के साथ वार्तालाप किया।

कही वत्त हूसेन सम। जो कहि साह सहाव ॥
नह मनिय :सोमंत हिय। दिय आरब्ब जवाब ॥ १६३ ॥

शब्दार्थ—सम = से।

अनुवाद—फिर आरब्ब शेख ने बादशाह शाहबुद्दीन का सदेश हुस्सैन शाह से कहा। हुस्सैन ने उसकी सलाह को अपने हृदय में नही माना तब अरब शेख ने शाह का धमकी वाला उत्तर दे दिया।

गयो सेप आरब्ब दर। लही प्रचर प्रथिराज ॥
बोलि मज्झ मडिप महल। सामंतन सब साज ॥ १६४ ॥

शब्दार्थ—दर = द्वार।

अनुवाद—तब शेख आरब्ब पृथ्वीराज के द्वार पर पहुँचा और सब भेद मालूम किया। फिर अपने महल के अन्दर पहुँच कर सब सामन्तों को सजाने के लिए कहा।

उठि गोरी दिन्ते बहुरि। गयौ सु अंदर साह ॥
बहुरि पांन मीरं वरा। अति चचल तुर ताह ॥ १६५ ॥

शब्दार्थ—तुर = आतुर, व्याकुल।

अनुवाद—गोरी बादशाह ने अपने समस्त सामतो को घर जाने के लिये विदाई दी और आप महल में चला गया। वडे वडे श्रेष्ठ वीर उमरावो के हृदय, जो उस समय सभा से लौटे थे व्यग्रता से चचल हो उठे।

तपै साहि गोरी सवर। चित्त साले चहुआंन ॥
वैरोचन की साष ज्यौं। कीटी अग प्रमान ॥ १६६ ॥

शब्दार्थ—साष = साख, वश।

अनुवाद—सरल है।

जग्गत निसि झपत सुरतानह। घरी सत्त रहि सेप प्रमानह ॥
जगि आयस दिय दीन निसानह। चिता साहि चढी चहुआनह ॥ १६७ ॥

शब्दार्थ—आयस = आज्ञा, चिता = चिंता।

अनुवाद—चौहान राजा के कारण शाहबुद्दीन अति चिंतित रहता था, रात भर जागते हुए बकता रहता था, और प्रात काल में सात घडी शेष रहने पर उठ कर नगाडे बजाने की आज्ञा देता था।

भए सुर तीन धुनक निसान। चढ्यौ सजि अश्व सिलहै सुरतान ॥
चढे सब पांन सु उम्मर मीर। सजे सहनाइ बजे रस वीर ॥ १६८ ॥

शब्दार्थ—सुर = स्वर।

अनुवाद—सुल्तान ने तीन बार जोर से नगाडे पर चोट पहुँचवाई जिससे भयानक शब्द उत्पन्न हुआ। तदुपरात वह कवच धारण कर घोडे पर सवार हुआ। शाहबुद्दीन के समस्त खान और मीर उमरावो ने भी युद्ध के लिए अभियान किया तथा वीर रस से परिपूर्ण शहनाइया बजने लगीं।

बजे सब बाज भयानक भाइ। चितै हिय बुद्धि जिनै जन नाइ ॥
चढ्यौ सब सज्जिय सेन गरिष्ट। परी दस दिग्ग सुधूधरि दिष्ट ॥१६९॥

शब्दार्थ—भाइ = भाव, जन-नाइ = राजा, गरिष्ट = बडा।

अनुवाद—वीर रस के बाजे भयानक स्वर से बजे जिनसे राजा के हृदय में नाना प्रकार के विचार आने लगे। शाह के बडे बडे सेना-नायकों ने

सुसज्जित होकर अभियान किया। उनके चलने से दसो दिशाओ में इतनी धूल उडी कि दृष्टि धूमिल हो गई।

सवद सियांन सुसेन कपोत। सनंमुप साहि दिष्यौ दल-दोत॥
भयो दिसि वामिय कग्ग करार। रुक्यौ दिवि धोमय धूम गभार॥१७०॥

शब्दार्थ—दल-दोत = यमदूत, वामिय = मार्ग।

अनुवाद—शस्त्रास्त्रो से सुसज्जित शाह की सुदर सेना के चलने पर सियान नामक अस्त्र की ध्वनि उद्भूत होती थी। साथ ही साथ कबूतर भी सूचना प्राप्त करने के लिए छोडे गए। सामने से आता हुआ शाहबुद्दीन का दल ऐसा प्रतीत हुआ मानो यमदूतों का दल चला आ रहा हो। सेना के चलने से जो धूल उडी उसके कारण सब दिशाएँ एव मार्ग कौवो के समान काले रग की हो गई।

सनमुप देषिय जबुक सेन। विरो मिलि चंपहि मग्गहि तेन॥
क्रम तस उप्पर गिद्ध असंप। चवै सुर रुद्र पसारिय पप॥१७१॥

शब्दार्थ—जबुक = गीदड, असप = असख्य।

अनुवाद—शाहबुद्दीन की सेना ने सामने गीदडो का झुण्ड देखा जिन्होंने विरोधी मार्ग से आकर उनका रास्ता काट दिया। उन सैनिको के ऊपर अगणित गिद्ध मडरा रहे थे और (गिद्धो के) फैले हुए पख इस प्रकार प्रतीत होते थे मानो साक्षात रुद्र देवता क्रोध कर रहे हो।

गही सुरतान सु आरब वग्ग। रहौ दिन आज सगुन न जग्ग॥
रहै कुछु अज्ज ततार सुदिन्न। गही चढ़ि चल्लहु मन्नि सगुन्न॥१७२॥

शब्दार्थ—वग्ग = लगाम।

अनुवाद—अरब जाति के अश्व की लगाम सुल्तान ने पकडी और कहा कि आज हमारे लिए अशुभ शकुन हो गया है अत आज यहीं ठहर कर तथा शुभ शकुन देखकर तातार जाति के घोडो के साथ चलना चाहिए।

कहै सुरतान अहो तुम क्रूर । भयें भय म्रित्यु सु झंपहु नूर ॥
कहा बल जुद्ध करौ प्रथिराज । कितौ बल सामंत जुद्दिह साज ॥१७३॥

शब्दार्थ—नूर=दीप्ति, क्रूर=खराब ।

अनुवाद—तब सुल्तान ने कहा कि तुम लोग बड़े खराब हो और मृत्यु के भय से तेजहीन हो रहे हो । भला पृथ्वीराज किस बूते पर हम से युद्ध करेगा, उसके पास कितनी सेना है और कितना युद्ध का सामान है ।

हनौं रन सूर जिके चहुआंन । गहौं जुधराज सु पंडिय प्रान ॥
कहा डर काफर दापहु मुझ्झ । कहा भर आवध आगरि जुझ्झ ॥१७४॥

शब्दार्थ—जिके=जितने, आगरि=आगार, भण्डार ।

अनुवाद—(शाहबुद्दीन ने कहा) अरे नीचो ! मुझे हिंदुओं का क्या भय दिखाते हो, मेरे पास युद्ध में जूझने वाले वीरों की खान है अतः चौहान के जितने वीर हैं उनको समर में मारूँगा तथा युद्ध में राजा को पकड़ कर उसको प्राणों से रहित कर दूँगा ।

नमनि चमकि चढ्यौ सुरतान । टमक्किय गज्जिय नद्द निसान ॥
जलथ्थल होय थल जल भार । अमग्गह मग्ग चलै गहि लार ॥१७५॥

शब्दार्थ—अमग्गह=अमार्ग ।

अनुवाद—सुल्तान उछल कर घोड़े पर चढ़ गया और बड़े जोर की ध्वनि करके नगाड़ा बजवाया । बड़े जोर से लड़ाई लड़ने के लिए मार्ग-कुमार्ग की चिंता न करता हुआ अपने अनुयायियों के साथ चल पड़ा ।

मिल्यौ इक साहन लष्ष समुद्द । समुझ्झिमन क्रन भयो सुर मुद्द ॥
चल्यौं सुरतान मिलान मिलान । बढी अति चिंत दुनी चहुआंन ॥१७६॥

शब्दार्थ—मिलान-मिलान=पड़ाव-पड़ाव, दुनी—दुगनी ।

अनुवाद—शाह को चलते चलते एक दरिया दिखाई पड़ा, जिसे देख कर सेना की गति मंद पड़ गई । सुल्तान पड़ाव पर पड़ाव से करता हुआ चल पड़ा जिससे चौहान के मन में चिंता द्विगुणित हो गई ।

गयौ साहि चहुआंन घर। दिए मिलान मिलान ॥
गए सुचर नागौर पुर। कही पब्बरि सुरतान ॥ १७७ ॥

अनुवाद—शाहबुद्दीन पडाव डालता हुआ चौहान के नगर की ओर चला और उसके आने की सूचना दूतो ने नागौर जाकर पृथ्वीराज को दी।

देखि चरित नृप साह चर। गए पास सुरतान ॥
कहैं सेन संमुप रजै। चढि आयौ चहुआंन ॥ १७८ ॥

अनुवाद—पृथ्वीराज की चढाई का हाल देख कर शाहबुद्दीन के दूतो ने सुल्तान के पास जाकर कहा कि चौहान ने अपनी सेना सामना करने के लिए सजाई है और वह चढाई करने ही वाला है।

सुनि चरित्त साहाव चर। दिय नरघोष निशान ॥
चढ्यौ सेन सज्जे सिलह। करिव फोज सुरतान ॥ १७९ ॥

अनुवाद—शाहबुद्दीन ने दूतो के द्वारा पृथ्वीराज के चढ आने का वृत्तात सुनकर नगाडे पर भयानक आवाज करवाई। स्वय सैनिक कवच धारण कर सेना को आक्रमण करने के लिए शस्त्रास्त्र द्वारा सुसज्जित किया।

चढ्यौ सुरतान सुसज्जिय फौज। वजे वर वज्जन वीर असोज ॥
भयौ गज घुंमर घट निघोर। मनौं झुकि कन्न भयौ सुर रोर ॥ १८० ॥

अनुवाद—सुल्तान ने सेना सजाकर आक्रमण किया तथा अजेय वीरो द्वारा श्रेष्ठ बाजे बजाए गए। हाथियो के घुमड कर आने से कानो को घटियो का भयानक शब्द सुनाई दिया।

गजै गज मद्द मनौं घन भद्द। चिकार फिकार भए सुर रुद्द ॥
तुरंग महींस कडक्क लगांम। खरक्किय पप्पर तोन सुतांन ॥ १८१ ॥

शब्दार्थ—गजै = गर्जते हैं, मद्द = मदमस्त, महीस = हिनहिनाना, पप्पर = झूल, तोन = तूणीर।

अनुवाद—मदमस्त हाथी गर्जने लगे और उनकी चिंघाड का विकराल शब्द ऐसा प्रतीत हुआ मानो भादो के बादल गर्जना कर रहे हो। कन्न,

तूणीर तथा झूल को धारण किए हुए घोडे हिनहिनाने लगे तथा लगाम को चवाने लगे।

चमकंत तेज सनाह सनाह। करैं धर पद्धर राह विराह॥
झलक्कत टोप सुटोप उतग। मनौं रज जोति उद्योत विहग॥ १८२॥

शब्दार्थ—उतग=ऊँचे, उद्योत=उदित हुए।

अनुवाद—उनके कवच तेज के कारण चमचमा रहे थे और उनके चलने से धरती के मार्ग कुमार्ग पर पगडण्डी वन जाती थी। उनके ऊँचे-ऊँचे टोप झनझनाते हुए ऐसे प्रतीत होते थे मानो उदय हुए सूर्य की ज्योति प्रकाशित हो रही हो।

दमकत तेज कमान कमान। चित चित मीर रही मडमान॥
भले भर सांइय ध्रम सगत्ति। लपैं धर जीयन जत्तिन गत्ति॥१८३॥

अनुवाद—सरल है।

नमैं निज सांइय पंच वपत्त। सिपारह तीस पढै दिन रत्त॥
नमैं निज सेप धरम सरंम। क्रमैं रह रीति कुरान करम॥ १८४॥

शब्दार्थ—साइय=स्वामी को, सरम=लज्जा।

अनुवाद—(वे सैनिक) अपने स्वामी शाहवुद्दीन को पाच वार अभिवादन करते थे तथा ईश्वर का स्मरण तीसो दिन अर्थात् पूरे महिने पाच वार नमाज पढकर करते थे। वे अपने शेख को धर्मानुकूल और लज्जानुकूल नमस्कार करते थे। कुरान में निर्दिष्ट कर्मो के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते थे।

ढिढवर वाचरु काछह मीर। तरु निय ग्क रते वर वीर॥
सबद्दय वेध करैं तम तांह। भमतिय पषि हनैं छित छांह॥ १८५॥

शब्दार्थ—सवद्दय=शब्द, भमतिय=भ्रमण करते हुए।

अनुवाद—मीर लोग दृढ कवच शरीर पर धारण करते थे। श्रेष्ठ-श्रेष्ठ योधा तरुणियो के साथ केलि-क्रीडा में रत थे। वे अंधेरे में शब्दभेदी वाण

चला सकते थे और (आकाश में) घूमते हुए पक्षियों की छाया को देख कर (उन्हें) मारने मे दक्ष थे।

धरै इक एक अनेक सुवान। झलक्कत मुंड तवल्लह मान ॥
धरैं धर नाहिय स्याहिय सीस। सिरक्कट्टि बंवर घुंमर दीस ॥ १८६ ॥

शब्दार्थ—तवल्लह=तवला, मान=समान।

अनुवाद—एक एक अर्थात् प्रत्येक के पास विविध प्रकार के बाण थे; उनके तवले के समान बडे-बडे सिर चमक रहे थे और अपने सिरो पर रग-बिरगे साफे बाधे हुए थे।

अनेक सुवान अनेकह रग। चढ़े सब मीरह सेन अभग ॥
अनेक सुवान अनेकय त्र न। समुज्झिझनहीय समुज्झिझन क्रन ॥ १८७ ॥

अनुवाद—उनके असख्य बाण विभिन्न रगो के थे तथा सब मीर नाना प्रकार के घोडो पर चढे हुए थे।

पय भर अग्ग अनेक [सुभार। अनेक सुजाति अनेक सुतार ॥
सिरं किय मुंडिय मुंड सुअद्ध। जुवट्टिय उट्टिय जानि अनद्ध ॥ १८८ ॥

अनुवाद—सरल है।

करं तिय झड्डिय रग अनेक। फुरक्कहि झंपहि झपह तेग ॥
चले धर वान सुसद्धिय दिठ्ठ। अगे हथ नारि अभूल गरिठ्ठ ॥ १८९ ॥

शब्दार्थ—तेग=तलवार।

अनुवाद—उन्होने अनेक रगो की झडियाँ बाध रक्खी थी, उनकी तलवारो की दीप्ति फडकते समय झलकती थी। वे पूरी तरह से तैयार होकर बाण तथा हय-गोले छोड रहे थे। वह साध कर ऐसा निशाना मारते थे कि वह लक्ष्य पर ही बैठता था।

अगं किय मद सरक्क सुभार। मनौं पय चल्लत पव्वत चार॥
दलैं सिर ढाल अनेक सुरग। फरैं फरहारि उभारिय अग ॥ १९० ॥

शब्दार्थ—पय=जल।

अनुवाद—आगे वीरोन्मत्त योधा चल रहे थे मानो पर्वत से जल की धारा क्षिप्र गति से नीचे की ओर आ रही हो। अनेक सुन्दर रगो की ढालें उनके सिर पर विद्यमान थी तथा अगो को उघाडकर अर्थात् स्फूर्ति से चलते समय फरसे चमचमा रहे थे।

वरनह भंडय मडय जूथ। मनों घट रित्ति अनंग्रह रूव ॥
भई पुर डंवर अवर रेन। जल थल पद्धरि सक्रमि सेन ॥ १६१ ॥

शब्दार्थ—वरनह = वर्णों के, जूथ = यूथ, झुण्ड, रूव = रूह।

अनुवाद—वहाँ पर एकत्रित नाना वर्णों के युवको के झुण्ड इस प्रकार प्रतीत होते थे जैसे कामदेव के रूप मे छहो ऋतुएँ शोभित हो। रग विरगे सध्याकाल के आने पर सेना जल-स्थल सब मार्गों पर फैल गई।

जगि मंत्री कैमास महा भर। गठिय चित्त चरित्त कहिय वर ॥
जग्गिय सथ्थ सज्ज निस सेन। गयो राज यह सज्जि द्रुगेन ॥ १६२ ॥

अनुवाद—महावीर कैमास सोकर जागे तथा दूत ने जो वृत्तात कहा उसे मन में समझा। उन्होने रात्रि में ही जाग कर अपनी सेना को तैयार किया तथा पृथ्वीराज के पास किले पर चले गए।

चरित लष्ष साहाव चर। गए पास सुरतान ॥
सजी सेन सामत पति। आयो जोजन थान ॥ १६३ ॥

अनुवाद—शाहबुद्दीन के दूतो ने यह देख कर सुल्तान के पास खबर पहुँचाई कि साभर नरेश (पृथ्वीराज) युद्ध के लिए तैयार है और वह केवल एक योजन दूर रह गया है।

सुनि चरित्त साहाव तास चर। बोलि मीर उमराव महा भर ॥
दिय निरघार घाव नीसान। चल्यौ सेन सज्जे सब्बन ॥ १६४ ॥

अनुवाद—शाहबुद्दीन ने अपने दूतो से यह वृत्तात सुनकर बडे योधा, मीर-उमराव आदि को बुलाकर एकत्रित किया। नगाड़े पर चोट लगवाई तथा समस्त सुसज्जित सेना को लेकर चल पड़ा।

वाजित्त वीर अनेक सुवज्जे । धर पडिहाय सुगोमइ गज्जे ॥
उग्यौ सूर चढ्यौ सुरतानं । वज्जि निहाव नाल गिरि वान ॥ १६५ ॥

अनुवाद—नाना प्रकार के वाजे वजने लगे तथा सेना के चलने से ऐसी आवाज हुई जैसे आकाश गिर पडा हो । जिस समय सुल्तान ने अभियान किया उस समय सूर्य लुप्त हो गया तथा (सुल्तान की सेना के) नगाडे वजने लगे और उन्होने नीलगिरि पर्वत से वाण छोडे ।

फौज सुपंच सजी साहाव । उलट्यौ सेन समुद्रह आवं ॥
दच्छिन दिसा सज्जि तत्तारं । दिसि वाई पुरसान सुधारं ॥ १६६ ॥

अनुवाद—शाहवुद्दीन ने अपनी सेना को अनेक प्रकार से तैयार किया तथा जव वह उनके (सेना के) साथ चलने लगा । तव ऐसा प्रतीत हुआ मानो समुद्र का प्रवाह उलट पडा हो । कवि सेना का चित्र खीचते हुए कहता है कि उस सेना के दक्षिण दिशा मे तातार खाँ तथा वाई ओर खुरसान तैयार खडा था ।

हाजिय राजिय गाजिय पानं । सनमुप सेन सजी सुरतान ॥
मीर जमांस पांन कमानं । महवति मीर पुट्ठि साजि तामं ॥ १६७ ॥

अनुवद—कवि सेना का चित्र खीचता हुआ पुन. कहता है कि एक ओर खान लोगो के हाथी घोडे शोभित हो रहे थे तथा दूसरी ओर अर्थात् सुल्तान के सामने सेना सजी हुई खडी थी । मीरादि अस्त्र-शस्त्रो से सुसज्जित इस प्रकार खडे थे मानो साक्षात् यम हो तथा गौर वर्ण महावत पृष्ठभाग मे तैयार खडे थे ।

पान मरुस्तम रुस्तम पान । मद्धि फौज रज्जे सुरतानं ॥
सहते वीस वीस सजि फौज । तु वा पच रचे अहहौज ॥ १६८ ॥

अनुवाद—मरुस्तम खाँ तथा रुस्तम खाँ की फौज के वीच मे सुल्तान खडा था । वीस-वीस सरदारो की टुकडी के सरक्षण में सेना अति शोभा दे रही थी । महहौज सरदार ने पाच-पाच की सेना की टुकडी को वृत्ताकार रूप में खडा किया ।

चिहुपप्पां गज घुमहि डमर । हथ्थ नारि गिरवान असंबर ॥
रिन रन तूर घोर नीसानं । भेरी शृंग गरुड थन थान ॥ १६६ ॥

शब्दार्थ—चिहुपप्पा = चारो ओर ।

अनुवाद—हथगोले, भाले, तीर-कमान आदि धारण किए हुए हाथी चारो ओर चिघाड रहे थे । नगाडो से भयकर ध्वनि प्रस्फुटित हो रही थी तथा भेरी, शृङ्ग और गरुड आदि वाद्य भी अपने अपने स्थान पर स्थापित थे ।

नफ्फेरी त्रिय विध सुर डंडं । जोमुप पट्ट वजे घन दड ॥
आवत भुम्भ डक्क ठहक्किय । हैं वर हींस दरक्क गहक्किय ॥२००॥

अनुवाद—नफ्फेरी वाजा तीन प्रकार के स्वरो से वज रहा था, जोमख-पट्ट नामक वाद्य पीटा जा रहा था, हाथियो का झुण्ड झूमता और चिघाडता हुआ चला आ रहा था तथा श्रेष्ठ घोडे हिनहिनाते हुए चले आ रहे थे ।

गज चिक्कार फिकार सवद्दं । तंदुल तवल मृदग रवद्दं ॥
जंगी वीर गुडीर अनेकं । वाजित्र अनेक गने को वेग ॥ २०१ ॥

शब्दार्थ—तदुल = चावल (परन्तु यहां पर आटा) ।

अनुवाद—हाथियो के चिघाडने का स्वर ऐसा प्रतीत होता था जैसे आटा लगाने के उपरान्त तवले और मृदग से सुन्दर शब्द निकल रहा हो । महान् युद्ध करने वाले असख्य वीर तथा विभिन्न प्रकार के वाजे भी वहां अगणित सख्या में थे ।

फौज पंच साजी साहावं । मीर अनेक गनै को नाव ॥
देस देस मिलि भाप अनतं । तवियन नाम अनेक गनतं ॥ २०२ ॥

शब्दार्थ—तवीयन = तावीज ।

अनुवाद—शाहबुद्दीन अपनी सेना को पाच प्रकार मे सजा कर चला । इस सेना मे देश विदेश से अनेक मीर-उमराव आ कर एकत्रित हुए । वे विभिन्न भाषाएँ बोलते थे और तावीज पहने हुए थे । इन सब की सख्या इतनी थी कि उनकी गणना नही हो सकती ।

फौज पच सजि चल्यौ अधिक जुसाह् । गर्ज्जै धरनि गैंन पुर गाह् ॥
सारुंडे सज्जयो दिसि वामं । पद्धर सद्धर उत्तिम ठाम ॥२०३॥

शब्दार्थ—गैंन=गगन, पुर=नगर, गाह्=गाव ।

अनुवाद—शाहबुद्दीन जब अपनी पाच प्रकार की सेना सजाकर चलता था तब इतनी धूल उडती थी कि उससे गगन, नगर एव गाव भर जाते थे । सारुण्ड नामक सरदार आवश्यक सामग्री तैयार करके उत्तम स्थान पर मोर्चा बांधे तैयार खडा था ।

उत्तिम पथरु पुठ्ठि जल । तष्षी जीय सुथान ॥
सारुंडो दिसि वांम दै । सजि ठाढौ सुरतान ॥ २०४ ॥

अनुवाद—सरल है ।

उड्डि रेन डबर अमर । द्दिष्यौ सेन चहुआन ॥
सुनिग क्रंन्न वाजित्र त्रहक । सजे सीस असमान ॥ २०५ ॥

अनुवाद—सरल है ।

तृतीय खण्ड

(पद्मावती समय सटीक)

पद्मावती समय

पूरब दिसि गढ़ गढनपति, समुद-सिषर अति द्रुग्ग ।
तहँ सु विजय सुर-राजपति, जादू कुलह अभग्ग ॥ १ ॥

शब्दार्थ—समुद-सिपर=समुद्र शिखर (दुर्ग का नाम), द्रुग=दुर्ग, किला, सुरराज=इन्द्र, जादू=यादव, कुलह=कुल, अभग्ग=अभग्न, अविच्छिन्न ।

अनुवाद—पूर्व दिशा मे समुद्र शिखर नामक अत्यन्त दुर्गम दुर्ग है तथा सब गढों में श्रेष्ठ भी है । यादवो की अटूट परपरा में उत्पन्न होने वाले राजा विजयपाल उस दुर्ग के स्वामी हैं ।

टिप्पणी—१ प्रस्तुत पद मे कवि ने दूहा छद का प्रयोग किया है जो आधुनिक दोहा छद का ही पूर्व रूप है ।

२ समुद सिपर में छेकानुप्रास की सुदर छटा है ।

३ इतना ही नहीं द्रुग्ग, अभग्ग आदि अपभ्रश शब्दो के प्रयोग के कारण इसकी (रासो पुस्तक की) प्राचीनता का भी अवबोध होता है ।

हसम हयग्गय देस अति, पति सायर अज्जाद ।
प्रबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसॉन बहु साद ॥ २ ॥

शब्दार्थ—हसम=धन-सम्पदा, वैभव, हयगय=हाथी-घोडे, सायर=सागर, अज्जाद=मर्यादा, सीमा, साद=शब्द ।

अनुवाद—वह राजा विजयपाल सागर पर्यन्त पृथ्वी का स्वामी है और उसके वैभव, घोडो हाथियो व राज्यो का अंत नहीं है । समस्त [illegible] रा उसकी सेवा करते हैं तथा उसके नगाडो का शब्द बहुत

टिप्पणी—१. प्रस्तुत पद मे भी कवि ने दूहा छद का प्रयोग किया है।

२ सेवहि तथा सकल शब्दो में छेकानुप्रास की छटा भी दर्शनीय है।

३ भाषा की दृष्टि से हसम शब्द अरबी के हश्मत शब्द का भ्रष्ट रूप है तथा मायर और मज्जाद शब्द प्राकृत से सबध रखते हैं।

४ मर्यादा का मज्जाद हो जाना अपभ्रश की उस प्रवृति का द्योतक है जिसके अनुसार धर्म का ध्रम्म और क्रम का क्रम्म हो जाता है।

धुनि निसॉन बहुसाद नाद सुर बजत पच दिन।
दस हजार हय-चढ़त हेम-नग-जटत साज तिन॥
गजअसप गजपतिय मुहर सेना तिय संपह।
इक नायक, कर धरी पिनाक, धर भर रज रप्पह॥
दस पुत्र पुत्रिय एक सम, रथ सुरग उम्मर डमर।
भंडार लछिय अगनित पदम, सो पदमसेन कूंवर सुघर॥३॥

शब्दार्थ—सुरपच=पचम स्वर, अथवा मृदग, तन्त्री, मुरली, ताल, दुदुभी आदि बाजे, मुहर=सेना, नायक=मण्डलाधिपति, घर भर=सारी पृथ्वी भर, उम्मर डमर=(अम्बर-डम्बर) रथ के ऊपर छत्राकार आच्छादन जिसे दल बादल भी कहते हैं।

अनुवाद—उस राजा के नगारो की ध्वनि बहुत तेज है तथा सदा ही पचम स्वर रहता है अथवा मृदंग, तन्त्री, मुरली, ताल और दुदुभी आदि पाच बाजे वहाँ सदा बजते रहते हैं। उसके दस सहस्र अश्वारोही ऐसे घोड़ो पर चढते हैं जिनके साज स्वर्ण रत्नो से जड़े हुए हैं। उसकी सेना में असख्य श्रेष्ठ हाथी हैं तथा उसकी सेना की सख्या तीन सम है। हाथ में धनुष ले कर वह अकेला उस सेना का नेतृत्व करता है और भूमि पर शासन करता है। समान रूप-गुण सम्पन्न उसके दस पुत्र और पुत्री हैं। उसके रथों के दलबादल (छाजन) सुदर रगो के हैं। उसके कोष में अगणित पद्मो की सख्या में धन है तथा चतुर और सुन्दर पद्मसेन कुंवर उसकी रानी है।

टिप्पणी—१ प्रस्तुत पद को कवि ने कवित्त कह कर पुकारा है। इस छंद को आजकल हम छप्पय कहते हैं।

२. प्रस्तुत पद में उदात्त अलंकार है।

पदमसेन कुंवर सुघर ता घर नारि सुजान।
ता उर इक पुत्री प्रकट मनहुँ कला ससभान ॥४॥

शब्दार्थ—उर = कुक्षि, ससभान = चंद्रमा।

अनुवाद—उस राजा के घर में कुमारी पद्मसेन नामक सुंदर और चतुर रानी है। उसके गर्भ से एक कन्या ने जन्म लिया जो चंद्रमा की कला के समान मनोहर थी।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

मनहुँ कला ससभान कला सोलह सो बन्निय।
बाल बैस, ससि ता समीप अम्रित रस पिन्निय॥
विगसि-कमल-स्रिग,भ्रम,बेनु,खंजन, म्रिग लुट्टिय।
हीर, कीर, अरु बिंब, मोति नष सिष अहिघुट्टिय॥
पदमिनिय रूप पदमावतिय मनहुँ काम-कामिनि रचिय॥ ५॥

शब्दार्थ—बन्निय = बनी थी, बैस = वयस, अवस्था, पिन्निय = पीया, स्रिग = सृक, माला, बेनु = वेणु, वंशी, कीर = तोता, अहिघुट्टिय = अभिघटित, रचा, छप्पति = छिपाती है; गयंद = गजेन्द्र, श्रेष्ठ हाथी, हरि = सिंह, विहु = विधि, ब्रह्मा, सचै = साचा, सचिय = संचित की, काम-कामिनी = कामदेव की स्त्री रति।

अनुवाद—राजकुमारी पद्मावती ऐसी सुंदर थी मानो चांद की एक कला हो और कला भी ऐसी जो चांद की पूरी सोलह कलाओं से बनी हुई हो। अभी उसकी बाल्यावस्था ही है किन्तु ऐसा लगता है मानो चंद्रमा ने उसी के पास से अमृत रस पीया हो। उसने अपने मुख, कर, चरण, आदि की शोभा से खिले हुए कमल को, केशों से भंवरों को, मधुर वचनों से वंशी को और नेत्रों की सुंदरता, चंचलता से खंजरीट पक्षियों को तथा उनकी विशालता से

हिरणियो को लज्जित कर दिया है। उसके चमचमाते अग हीरो से, नाक तोते की नासिका सी होठ बिंबा फल से और दात मोतियो मे हैं। इस प्रकार एडी से चोटी तक उसके समस्त अग उत्कृष्टतम पदार्थों से रचित हैं। इतना ही नही अपनी चाल से वह हाथी, सिंह और हस को भी लज्जित करती है। ब्रह्मा ने मानो साचा बना कर उसके अगो का निर्माण (सचयन) किया है। उस पद्मावती का रूप पद्मिनी नायिका के समान है मानो विधाता ने दूसरी रति की रचना की हो।

टिप्पणी—१. उत्प्रेक्षा, अन्योऽन्य, ललितोपमा अलकारो की ससृष्टि है।

२ हीर, कीर, आदि केवल उपमानों का कथन होने के कारण अतिशयोक्ति अलकार है।

मनहुँ काम-कामिनी रचिय रचिय रूप की रास।
पसु पछी सब मोहिनी, सुर, नर, मुनियर पास ॥ ६ ॥

शब्दार्थ—रास (राशि) = निधि, मुनियर = मुनिवर, पास (पाश) = जाल, फदा।

अनुवाद—उसको (पद्मावती) को देखकर ऐसा लगता है मानो समस्त रूप सौन्दर्य की राशि उस पद्मावती के रूप में ब्रह्मा ने रति की ही रचना की हो। पशु, पक्षी, सुर, नर, मुनिवर आदि सभी उसके सौन्दर्य-पाश में फस जाते हैं।

सामुद्रिक लच्छन सकल, चौंसठि कला सुजान।
जानि चतुर्दस अङ्ग मर्म, रति बसन्त परमान ॥ ७ ॥

शब्दार्थ—सामुद्रिक = हस्तरेखा आदि देखकर शुभाशुभ बताने की विद्या, परमान = समान।

अनुवाद—वह सामुद्रिक शास्त्र में वर्णित समस्त सुलक्षणो से युक्त थी और चौंसठ कलाओ में भी पारगत थी। वह चौदह विद्याओ तथा वेद के छहों अगो की जानकार थी। सौन्दर्य में रति तथा यौवन-विकास में वसत के समान थी। अर्थात् वह वसत में अधिक शोभित होने वाली रति के समान थी।

टिप्पणी—चौदह विद्याओं का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है—

पुराणन्याय मीमांसाः धर्मशास्त्रांग मिश्रिताः।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दशः॥

सपियन संग खेलत फिरत महलनि बग्ग निवास।
कीर इक्क दिष्पिय नयन तब मन भयो हुलास॥ ८॥

शब्दार्थ—दिष्पिय = देखा, हुलास = उल्लास।

अनुवाद—एक दिन जब वह (पद्मावती) महलों के बाग में अपनी सहेलियों के साथ खेल रही थी तब अपने नेत्रों से उसने एक तोता देखा। तोते को देख कर उसके मन में बड़ा हर्ष हुआ।

टिप्पणी—'कीर इक्क दिप्पिय नयन' की भाषा में प्राचीनता की झलक मिलती है। 'इक्क दिपिय' प्रयोग डिंगल भाषा के हैं। 'मन अति भयो हुलास' में भाषा का रूप अपेक्षकृत आधुनिक है। यह पिंगल या सरल ब्रज-भाषा का रूप है।

मन अति भयो हुलास, बिगसि जनु कोक किरन-रवि।
अरुन अधर तिय सधर, बिंबफल जानि कीर छवि॥
यह चाहत चष चक्रित, उह जु तक्किय झरप्पि झर।
चचु चहुट्टिय लोभ, लियो तब गहित अप्प कर॥
हरषत अनंद मन मह हुलस, लै जु महल भीतर गई।
पंजर अनूप नग मनि जटित, सो तिहि मँह रष्यत भई॥ ९॥

शब्दार्थ—कोक = कोकनद, कमल, कोक = चकवा, अरुन = लाल, अधर = ओठ, सधर = वह धारण करती है, चष = चक्षु, नेत्र, चक्रित = चकित, तक्किय झरप्पि झर = देख कर तुरत झपटा, चच चहुट्टिय = चोंच [illegible]ला दी, गहित = गृहीत, पकड़ा, अप्प = अपने, महि = मध्य = में, नग = रत्न, रष्यत भई = रखा।

अनुवाद—तोते को देख कर पद्मावती का मन ऐसे आनंदित सूर्य की किरणों से लाल कमल या चकवे का हृदय-कमल खिल

उस स्त्री (पद्मावती) के अधर लाल वर्ण के थे जिससे तोते को विवफल का भ्रम हो गया। यह पद्मावती चकित नेत्रों से उस तोते को देखने लगी, और उसने भी पद्मावती को देखा तथा विवफल के लालच से झपट कर चोंच चला दी। पद्मावती ने भी उसे तत्क्षण अपने हाथ में पकड लिया और प्रसन्न होती हुई उसे महल के भीतर ले गई, वहाँ मणि-रत्नो से जडे हुए एक सुन्दर पिंजरे में उसे रख दिया।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में उत्प्रेक्षा तथा भ्राति अलकार का प्रयोग हुआ है।

तिही महल रष्पत भइय गइय खेल सव भुल्ल ॥
चित्त चहुँट्टयौ कीर सो राम पढावत फुल्ल ॥ १० ॥

शब्दार्थ—चहुँट्टयो = लग गया, फुल्ल = हर्ष पूर्वक।

अनुवाद—पद्मावती ने उसे महल में रख लिया। उस तोते से उसका मन ऐसा हिलमिल गया कि वह खेल कूद भी भूल गई तथा प्रफुल्लित होकर उसे राम-राम पढाने लगी।

टिप्पणी—चित्त चहुँट्टयो में छेकानुप्रास अलकार है।

कीर कुवरि तन निरपि दिपि, नप सिप लौं यह रूप।
करता करी वनाय कै, यह पद्मिनी सरूप ॥ ११ ॥

शब्दार्थ—तन = ओर।

अनुवाद—तोता भी राजकुमारी की ओर देख कर तथा एडी से चोटी तक उसके सब अगों के अलौकिक सौन्दर्य का अवलोकन कर सोचने लगता कि विधाता ने इसे बहुत यत्नपूर्वक पद्मिनी नारी के समान सुन्दर बनाया है।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में कीर व कुवरि में छेकानुप्रास अलकार है।

कुट्टिल केस सुदेस पोह परिचियत पिक्क सद।
कमल-गध, वय-संध, हंसगति चलत मंद मंद ॥
सेत वस्त्र सोहै सरीर नप स्वाति-बुन्द जस।
भ्रमर भवहिं भुल्लहिं सुभाव मकरंद वास रस ॥

नयन निरपि सुप पाय सुक यह सुदिव्य मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत मिलहि राज प्रथिराज जिय ॥ १२ ॥

शब्दार्थ—कुट्टिल=कुटिल, घुघराले, सुदेस=सुन्दर, पोह=पुहे हुए, गुथे हुए, परिचियत=परिचित होते हैं, दिखाई देते हैं, पिक्क सद=पिक शब्द, कोयल जैसा स्वर, रचियत=रचे हैं, सेत=श्वेत, सद्=श्रेष्ठ, वय-सघ=शैशव और यौवन का मिलन काल।

अनुवाद—इसके (पद्मावती) घुघराले बाल, सुन्दर तथा पुष्पो से गूथे हुए हैं। कण्ठ-स्वर कोयल सा है। शरीर मे कमल की गध आती है। इसके शरीर में कौमार्य तथा यौवन का मिलन सा हो रहा है। यह मदभरी मद गति से हस के समान चलती है। इसके तन पर उज्जवल वेश शोभा देता है और नाखून मोतियो से चमकते हैं। भ्रमर सहज ही भूल मे उसे फूल समझ कर तथा पुष्प रस वा सुगन्ध के लोभ से उसके चारो ओर मण्डरा रहा है। इस प्रकार उसकी रूप-छटा नेत्रो से देखकर वह तोता बहुत हर्षित हुआ और विचार करने लगा कि इसके शरीर को ईश्वर ने किसी शुभ दिन बनाया है। यदि पार्वती व शिव की कृपा-दृष्टि हो तो यह महाराज पृथ्वीराज की रानी बने।

टिप्पणी—१ 'स्वाति बूंद' का अर्थ मोती इस कारण से है कि स्वाति नक्षत्र में सीप में गिरी हुई वर्षा की बूदें मोती बन जाती हैं।

२ काम-शास्त्र के अनुसार पद्मिनी नायिका के शरीर मे कमल की सी गन्ध आया करती है।

३. 'उमा प्रसाद हर हेरियत' पक्ति का अन्वय इस प्रकार करना चाहिए—उमा हर प्रसाद हेरियत अर्थात् उमा (पार्वती) और हर (शिव) के प्रसाद को मन मे देखता है अर्थात् कामना करता है।

४ प्रस्तुत पद मे उपमा तथा भ्रांति अलकार है।

सुक समीप मन कुँअरि को लग्यो वचन के हेत।
अति विचित्र पडित सुआ कथत जु कथा अमेत ॥ १३ ॥

शब्दार्थ—हेत=हेतु; निमित्त, अमेत (अमित)=अत्यधिक।

वे धैर्यशाली, साहसी, सुकर्मी व पराक्रमी वीर हैं मानो सुमत्त दानव के अवतार हो।

दस च्यार जानि सब कला भूप।
कद्रप्प जान अवतार रूप ॥ २१ ॥

अनुवाद—वे चारो दिशाओ की कलाओ मे निपुण हैं और सौन्दर्य के कारण काम के अवतार माने जाते हैं।

कामदेव अवतार हुअ सुअ सुअ सोमेसर नन्द।
सहस-किरन झलहल कमल रति समीप वर विंद ॥ २२ ॥

शब्दार्थ—सुअ = सुत, नंद = आनंदित करने वाले, सहस-किरन = सहस्र-किरन, सूर्य, झलहल = जगमगाना, खिलना, वर = दूल्हा, विंद = विद्यमान होते हुए।

अनुवाद—सोमेश्वर का प्यारा पुत्र पृथ्वीराज मानो कामदेव का अवतार ही है। जिस प्रकार सहस्र-किरण सूर्योदय को पाकर कमल खिल उठता है उसी प्रकार वर (पृथ्वीराज) के समीप विद्यमान होने से यह नायिका सुशोभित होगी।

टिप्पणी—इस पद मे रूपक अलकार है।

सुनत स्रवन प्रथिराज जस उमँग बाल विधि अँग।
तन मन चित चहुवॉन पर वस्यो सुरत्तह रंग ॥ २३ ॥

शब्दार्थ—विधि = अच्छी तरह, रत्तह = अनुरक्त होकर, रग = प्रेम रग, सु = अच्छी तरह।

अनुवाद—कानो मे पृथ्वीराज का यश सुनकर उस बाला के समस्त अग रोमाचित हो गए और उसके तन, मन और चित्त प्रेम रग में अच्छी तरह रग कर पृथ्वीराज मे अासक्त हो गए।

वैस विती सिसुता सकल आगम कियो वसन्त।
मात पिता चिंता भई सोधि जुगति को कंत ॥ २४ ॥

शब्दार्थ—वैस = वयस, अवस्था, वसृत = यौवन, सोधि = ढूढने के लिए, जुगति को = उपयुक्त।

अनुवाद—उसकी (पद्मावती की) सम्पूर्ण बाल्यावस्था व्यतीत हो गई और उसके शरीर में यौवन का आगमन हुआ। अब उसके माता-पिता को उसके लिए योग्य वर खोजने की चिंता ने आ घेरा।

सोधि जुगति को कत कियौ तव चित्त चहौं दिस।
लयो विप्र गुरु बोल कही समुझाय वात तिस॥
नर नरिंद गढ़पति वडे गढ़ द्रुग्ग असेसह।
सीलवंत कुल सुद्ध देहु कन्या सुनरेसह॥
तव चलन देइ दुज्जह लगन सगुन वंद दिय अप्प तन।
आनद उछाह समुदह सिषर वजत नद्द नीसॉन घन॥ २५॥

शब्दार्थ—तिस = उसको, असेसह = अशेष, सम्पूर्ण, वद = रोली (मागलिक द्रव्य) अप्प तन = अपने हाथ मे, दुज्जह = द्विज, चलन = चलने की अनुमति, लगन = विवाह का लग्न, सगुन = शकुन, नद्द = नाद, नीसदि = नगाड़े।

अनुवाद—तव योग्य वर की खोज के लिए राजा ने अपना मन चारो ओर दौड़ाया। फिर उन्होने अपने कुलगुरु ब्राह्मण को बुलाया और सब बातें समझा कर कही—सब बड़े-बड़े दुर्गों के श्रेष्ठ राजाओं में से उच्च वंश का सुशील व गुणी राजा हो उससे मेरी कन्या की सगाई कर आओ। तब राजा ने अपने हाथ से ब्राह्मण को लग्न व शकुन की रोली देते हुए विदा दी। उस समय सारे समुद्र शिखर में आनन्द और उत्साह का नया तथा गंभीर नाद करते हुए नगाड़े वजने लगे।

टिप्पणी—१. प्रस्तुत पद के तीसरे चरण में लाटानुप्रास अलंकार है।
२. पांचवें व छठे चरण में छेकानुप्रास अलंकार है।

सवालष्य उत्तर सयल कमऊँ गढ़ दूरंग।
राजत राज कुमोदमनि हय गय द्रिव्व अभंग॥ २६

शब्दार्थ—सवालप्प = शिवालक, सयल = शैल, दूरग = दुर्गम, द्रिव्व = द्रव्य, अभग = अत्यधिक ।

अनुवाद—शिवालिक नामक उत्तरीय पर्वतमाला मे अत्यत दुर्गम कुमाऊँ दुर्ग है । वहाँ कुमुदमणि राजा जिनके पास हाथी और घोडे अनन्त हैं, शोभित होते हैं ।

नारिकेल फल परठि दुज चौक पूरि मनि मुत्ति ।
दई जु कन्या वचन वर अति आनन्द करि जुत्ति ॥ २७ ॥

शब्दार्थ—परठि = प्रतिष्ठित करके, मुक्ति = मुक्ता, जुत्ति = युक्ति ।

अनुवाद—ब्राह्मण ने मणि और मोतियो से चौक पूर कर, वहाँ नारियल का फल स्थापित कर दिया और आनन्दपूर्वक यथाविधि वाणी द्वारा वह कन्या उस वर को दी अर्थात् सगाई कर दी ।

टिप्पणी—मनि, मुत्ति, एव वचन, वर, में छेकानुप्रास अलकार है ।

विहसित वरं लगन लिन्नो नरिंदं ।
बजी द्वार द्वारं सु आनद दुंद ॥
गढनं गढ पत्ति सब बोलि नुन्ते ।
सब आइय भूप कुटुंब सजुत्ते ॥ २८ ॥

शब्दार्थ—लिन्नो = लिया, दुदु = दुदुभि, नगाडा, गढन = गढ़ो के, गढ-पत्ति = दुर्गपाल, नुन्ते = निमन्त्रित किए, सजुत्ते = सयुक्त ।

अनुवाद—राजा ने हसते हुए वह सुन्दर लग्न स्वीकार किया । तब प्रत्येक द्वार पर आनन्द के नगाडे बजने लगे । राजा ने सब दुर्ग रक्षको को बुलावा भेजा । सब परिवार अपने परिवारो सहित आ पहुँचे ।

चले दस सहस्स असव्वार साल ।
पूरिय पैदल जेति चेती नु थान ॥
मत मद गलित सै पंच दन्ती ।
मनो साम पाहार बग पंत-पन्ती ॥ २९ ॥

शब्दार्थ—यान = रथ, पूरिय = पूरित हुआ; जेति तेती सु = जितना था उतना सब, थान = स्थानम्, साम् = श्याम, पाहार = पर्वत, वग पत-पती = वगुलो की पक्ति ।

अनुवाद—दस सहस्त्र रथारोही रथो पर सवार होकर चले। जितना स्थान था, उसे पैदल सेना ने, सर्वथा भर दिया । साथ पाच-सौ मस्त हाथी थे जिनका मद वह रहा था। उनके दात ऐसे प्रतीत होते थे जैसे काजल के पर्वतो में वगुलो की पक्तियां विराजमान हो ।

चले अग्गि तेजी जु तत्ते तुषार।
चौवर चौरासी जु साकत्ति भार ॥
कठ नग नूपं सनूप सुलालं।
रग पंच रंग ढलक्कन्त ढाल ॥ ३० ॥

शब्दार्थ—तुपार = घोडो की जाति, चौवर = चवर, चौरसीघुघरुओ का वना हुआ अश्वभूषण, साकत्ति = वरछा, नूप = अनुपम ।

अनुवाद—तुपार जाति के घोडे अग्नि के वेग से वढे । उन पर चवर, घुघरूओ के भूषण और वरछों के समूह शोभा देते थे। उनके गलो में अतुल लाल व रत्न शोभायमान थे और पाँच रगो वाली ढालें उन पर झूल रही थी ।

पंच सुर सावद वाजित्र वाज।
सहस्स सहन्नाय. म्रिग मोहि राज ॥
समुद सिर सिपर उच्छाह छाह।
रचित मंडप तोरन श्रीयगाह ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ—सहन्नाय = शहनाई, म्रग = मृग, राज = शोभित, तोरन = तोरण, वाहरी द्वार, श्रीयगाह = अगाध शोभा वाले ।

अनुवाद—वाजो से पाच प्रकार के शब्द निकल रहे थे । हिरनो का हृदय हरने वाली हजारो तुरहियां वजती हुई शोभा दे रही थी । समुद्र शिखर दुर्ग में भरपूर उत्साह छाया हुआ था । अपार शोभा से युक्त मण्डप व वाहिरी द्वार रचे गए थे ।

पदमावती विलपि वर वाल वेली ।
कही कीर सों वात तव हो इकेली ॥
झट जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेह ।
वरं चाहुआनं जु आनो नरेस ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ—विलपि = रोती हुई, वर वाल वेली = नवीन लता के समान सुन्दर ।

अनुवाद—सुन्दर नन्ही वेल के समान पद्मावती ने तव तोते से एकात में रोते-रोते यह वात कही—हे तोते, तुम शीघ्र सुन्दर दिल्ली को जाओ और श्रेष्ठ चौहान राजा को ले आओ ।

टिप्पणी—वाल वेली में छेकानुप्रास अलकार है ।

आनो तुम्ह चहुवांन वर, अरु कहि इहै सदेस ।
सांस सरीरहिं जो रहै प्रिय प्रथिराज नरेश ॥ ३३ ॥

अनुवाद—तुम चौहान को यह सदेश दे कर यहाँ आना कि जव तक शरीर में सास है तव तक राजा पृथ्वीराज ही मेरे प्रिय हैं और कोई नही ।

प्रिय प्रथिराज नरेस जोग लिपि कग्गर दिन्नो ॥
लगन वरग रचि सरव दिन्न द्वादस ससि लिन्नो ॥
सै ग्यारह अरु तीस साख सवत परमानह ॥
जो पित्री-कुल सुद्ध वरनि वरि रक्खहु प्रानह ॥
दिप्पंत दिट्ठि उच्चरिय वर इक पलक्क विलंव न करिय ॥
अलगारि रयनि दिनपच महि ज्यों रुकमिनि कन्हर वरिय ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ—जोग (योग्य) = के लिए, कग्गर = कागज, पत्र, दिन्नो = दिया, लगन वरग = विवाह के लग्न की कुण्डली, द्वादस ससि = शुक्ल पक्ष की द्वादसी तिथि, साख = वैशाख, पित्री कुल = पितृ वश, वरनि = वरणीया, वरि = वरण कर, उच्चरिय = चलिए, अलगारि = पृथक् मार्ग से ।

अनुवाद—पद्मावती ने अपने प्रिय राजा पृथ्वीराज के लिए एक पत्र लिख

कर तोते को दिया । उस में लग्न की कुण्डली वैसाख मास शक सवत् ११३० तथा शुक्ल पक्ष की द्वादशी तिथि आदि पूरी-पूरी लिखी । साथ ही यह भी लिखा कि यदि आप शुद्ध क्षत्रिय वश के व्यक्ति है तो मुझ वरणीया को वर कर मेरे प्राण बचाएँ । हे प्रिय, इस पत्र के दृष्टिगोचर होते ही उठकर चल पडो, क्षण भर भी देर ना लगाओ और पाँच रात दिनो में पहुँच कर एक तरफ से मुझे वैसे ले जाएं जैसे श्रीकृष्ण रुक्मिणी को ले गए थे ।

टिप्पणी – अतिम चरण मे वाक्यार्थोपमा है ।

ज्यौं रुक्मिनि कन्हर वरिय त्यौं वरि सभरि कांत ।
सिव मंडप पच्छिम दिसा पूजिय समय सुप्रात ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ—कन्हर=कन्हैया, वरिय=वरण किया ।

अनुवाद—हे साभर के प्यारे नरेश, जैसे कृष्ण ने रुक्मिणी का वरण किया था वैसे आप मेरा कीजिए । यहाँ पश्चिम दिशा मे शिव का मण्डप है वहाँ मैं शिव की पूजा के लिए बहुत सवेरे पहुँचूंगी ।

लै पत्री सुक यौं चल्यौ उढ्यो गगन गहि वाव ।
जँह दिल्ली प्रथिराज वर अट्ठ जाम मे जाव ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ—वाव=वायु, जाम=याम, प्रहर ।

अनुवाद—इस प्रकार वह तोता पत्र लेकर वायु के साथ आकाश में उड गया । वह आठ पहर में दिल्ली जा पहुँचा जहाँ पर पृथ्वीराज रहते थे ।

दिय कग्गर नृप राजकर षुलि वंचिय प्रथिराज ।
सुक देषत मन मे हँसे कियो चलन को साज ॥ ३७ ॥

शब्दार्थ—षुलि=खुलि, खोल कर, वांचिय=वाँचा ।

अनुवाद—तोते ने वह पत्र राजेश्वर के हाथ मे दे दिया । पृथ्वीराज ने उसे खोल कर पढा, तोते को देख कर हसे और चलने की तैयारी करने लगे ।

उहै घरी, उहि पलन, उहै दिन, बेर उहै सजि ।
सकल सूर सामंत लिए सब ।

अनुवाद—जब बारात नगर के निकट पहुँची तब दोनो वर (कुमुदमणि और पृथ्वीराज) वहाँ उपस्थित हो गए। समुद्रशिखर पर दोनों ओर के राजाओं के घोडे और हाथियों का बडा भारी शब्द हुआ। स्वागतकारी राजकुमारों ने बहुत अच्छी तरह घोडों को सजा कर स्वागत किया। सब स्त्रियाँ बारात को देखने के लिए झरोखो और छतो पर बैठी हुई शोभा देने लगी। उसका मुखचन्द्र मानो शोक रूपी राहु की छाया मे लीन हो गया। वह प्रतिक्षण झरोखे मे से पुलकित हो कर झाँकती थी और दिल्ली के श्रेष्ठ राजा का मार्ग देखती थी।

टिप्पणी—'उभय-भय' मे यमक 'बनि-बनि' में वीप्सा तथा पचम चरण में उत्प्रेक्षा अलकार है।

दिष्पंत पथ दिल्ली दिसॉन सुपभ्यो सुक जब मिल्यो आन।
सदेस सुनत आनद नैन उमगीय बाल मनमथ्थ सेन ॥४२॥

शब्दार्थ—मनमथ्थ = मन्मथ,कामदेव।

अनुवाद—पद्मावती दिल्ली की ओर का मार्ग देखने लगी। इतने में तोता आ कर उसे मिला जिससे उसे अत्यत आनद हुआ। तोते के वचन सुन कर वह उमग से ऐसे भर गई जैसे कामदेव की सेना उसके हृदय में आ खडी हुई हो।

तन चिकट चीर डारयो उतार मज्जन मयक नव सत सिंगार।
भूषन मॅगाय नषसिष अनूप सजिसेन मनो मनमथ्थभूप ॥४३॥

शब्दार्थ—चिकट चीर = मैला वस्त्र, मज्जन = स्नान, मयक = चद्रमा, नव सत सिंगार = सोलह शृगार।

अनुवाद—उसने (पद्मावती ने) शरीर से मैला वस्त्र उतार फेंका। उस चद्रमुखी ने स्नान के पश्चात् सोलह शृङ्गार किए। अत्यत सुदर अगो पर गहने मगवा कर पहने। तब ऐसे लगता था जैसे कामदेव रूपी राजा ने अपनी सेना सजाई हो।

सोव्रन्न थार मोतिन भराय झलहल करंत दीपक जराय।
सगह सषिय लिय सहस बाल रुकमिनिय जेम लज्जत मराल ॥४४॥

शब्दार्थ—सोव्रन्न=सुवर्ण, जेम=ज्यों; लज्जत=लज्जित करती है, मराल=हस।

अनुवाद—सोने के थाल को मोतियो से भर कर, उनमें झलमलाते हुए दीपक धर कर और साथ एक सहस्त्र कुमारी सखियो को लेकर रुक्मिणी के समान अपनी चाल से हसो को लज्जित करती हुई पद्मावती शिव मण्डप को चली।

पूजियइ गउरि संकर मनाय दच्छिनइ अग करि लगिय पाय।
फिर देषि देषि प्रथिराज राज हँसि मुद्ध मुद्ध चर पट्ट लाज ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ—दच्छिनह=प्रदक्षिणा, मुद्ध मुद्ध=मोहित मुग्धा, नायिका; दच्छिनह अग करि=उनके अग शरीर या प्रतिमा की प्रदक्षिण कर के; चर=चला दिया, पट्ट=वस्त्र, लाज=लज्जा।

अनुवाद—उसने (पद्मावती ने) मन में गोरी व शकर का ध्यान करते हुए उनकी (मूर्त्तियो की) प्रदक्षिणा की और उन मूर्त्तियो पर गिर पडी। तत् पश्चात् राजा पृथ्वीराज की ओर देख वह मुग्धा नायिका (पद्मावती) मुग्ध हुई और उसने हँस कर लज्जा से मुँह ढांप लिया।

कर पकरि पीठ हय पर चढ़ाय लै चल्यौ त्रिपति दिल्ली सुराय।
भइ पवरि नगर बाहिर सुनाय पद्मावतीय हरि लीय जाय ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ—त्रिपति=नृपति, पृथ्वीराज, पवरि=खबर, हरि लीय जाय=हरण कर के लिए जा रहा है।

अनुवाद—राजा (पृथ्वीराज) ने यह देखकर उसका हाथ पकड कर उसे घोडे की पीठ पर चढा लिया और दिल्ली की ओर ले चले, नगर में बाहर भीतर इस प्रकार खबर सुनाई दी कि पद्मावती को हर कर लिए जाता है।

बाजी सुबय हयगय पलांन, दौरे सुसज्जित **विस्सा दिसांन**।
तुम्ह लेहु लेहु मुख जपि जोध इन्नाह **सूर सब पहरि क्रोध** ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ—पलांन=पर्याण, काठी, दिस्सह दिसान=दिशा, दिशा से, जपि=जल्प, बोलना, हन्नाह=सन्नाह, कवच।

अनुवाद—(उसी अवसर पर) युद्ध का नगाड़ा बजने लगा। हाथियों और घोड़ों पर काठियाँ आदि कसी गईं। योद्धा प्रत्येक दिशा से दौड़ पड़े। सब शूर वीर योद्धा कवच पहन कर क्रोध पूर्वक मुख से लेना, पकड़ना आदि शब्द ललकारते हुए कहने लगे।

अग्गे जु राज प्रथिराज भूप पच्छे सु भयो सब सेन रूप।
पहुँचे सुजाय तत्ते तुरग भुअ भिरन भूप जुरि जोध जंग॥ ४८॥

शब्दार्थ—जुरि=जुड़कर, भुअ=भुज, भिरन=भिड़ कर।

अनुवाद—राजा पृथ्वीराज आगे जा रहे थे। सब सेना उनके पीछे थी। तेजस्वी घोड़े उनके पास जा ही पहुँचे। भूमि पर राजा लड़ पड़े और उनके योद्धा भी (परस्पर) लड़ने लगे।

उलटी जु राज प्रथिराज बाग थकि सूर गगन, धर धसत नाग।
सामंत सूर सब कालरूप गहि लोह छोह बाहैं सु भूप॥ ४९॥

शब्दार्थ—लोह=खड्ग आदि अस्त्र-शस्त्र, छोह=उत्साह।

अनुवाद—राजा पृथ्वीराज ने ज्यों ही बाग मोड़ी तब (भय से) आकाश में सूर्य रुक गया और शेष-नाग पर स्थित भूमि नीचे धसने लगी। सब सरदारों और वीरों ने यमराज का रूप धारण किया हुआ था और योद्धा अस्त्र-शस्त्र को बहुत उत्साह से चलाते थे।

कम्मॉन, बांन छुट्टहिं अपार लागंत लोह इमि सार धार।
घमसॉन घान सब वीर पेत घन स्रोन बहत अरु रकत रेत॥ ५०॥

शब्दार्थ—सार धार=धारा-सार, वर्षा की झड़ी, घान=घाव या चोट, स्रोन=शोण, रक्त।

अनुवाद—धनुषों से असंख्य बाण छूटते थे और वर्षा की झड़ी के समान कवचों पर आ लगते थे। उस भयंकर युद्ध में सब वीर हताहत हुए। रक्त बहने लगा और रेत लाल हो गई।

मारे वरात के जोध जोह परि रुंड मुंड अरि पेत मोह ॥ ५१ ॥

शब्दार्थ—जोध = योद्धा ।

अनुवाद—पृथ्वीराज के योद्धाओ ने वरात के योद्धाओ को ढूढ कर मार डाला । युद्ध भूमि शत्रुओ के सिरो और कवचो से सुशोभित हो गई ।

परे रहत रिन पेत अरि करि दिल्लिय सुप रुप्प ।
जीति चल्यो प्रथिराज रिन सकल सूर भय सुप्प ॥ ५२ ॥

शब्दार्थ—रिन = रण, रुप्प = रुख, दिशा ।

अनुवाद—शत्रुओ को युद्ध भूमि में सुला कर दिल्ली की ओर मुह किया, जिससे सभी शूर-वीरो को वडा सुख हुआ ।

टिप्पणी—सुप, रुप्प मे छेकानुप्रास अलकार है ।

पदमावति इमि लै चल्यो हरपि राज प्रथिराज ।
एते परि पतिसाह की भई जु आनि आवाज ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ—आनि = आने की, आवाज = समाचार ।

अनुवाद—इस प्रकार महाराज पृथ्वीराज हर्षित होकर पद्मावती को ले कर चले कि इतने में ही वादशाह के आने का समाचार मिला ।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद के आवाज आदि शब्द फारसी के आवाज शब्दो के हिन्दी रूप हैं ।

भई जु आनि अवाज आय साहावदीन सुर ।
आज गहौं प्रथिराज वोल वुल्लत गजत धुर ॥
क्रोध जोध, जोधा अनंत पती अनि गज्जिय ।
वॉन, नालि, हथनालि, तुपक, तीरह स्रव सज्जिय ॥
पब्वै पहार मनो सार के भरि भुजान गजनेस वल ।
आए हकारि हकार करि पुरासान सुलतान दल ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ—सुर = शूर वीर, गजत = गर्जन करता हुआ, धुर = जोर से

जोध = युक्त, जोधा = योद्धा, अनि = अनीक सेना, नालि = तोप, हय-नालि = वन्दूक, तुपक = छोटी तोपी, सव = सर्व, सव, पव्वै = चलते हैं, सार के = लोहे के, वल = सेना, हकारि = वुलाए गए, हकार = अहकार।

अनुवाद—यह समाचार चारो ओर फैल गया कि शूर शहावुद्दीन आ गया है और वहुत ऊँचा गरज कर कहता है कि आज पृथ्वीराज को पकड लूंगा। उनकी सेना के सैनिक क्रोध से पूर्ण थे और असख्य पक्तियो में वैठे हुए गरज रहे थे। वे सव वाणो, वडी छोटी तोपो, वन्दूको व तीरो से सुसज्जित थे। गजनी-पति (शहावुद्दीन) की सेना एकत्रित हो कर युद्ध करती हुई ऐसी लगती थी जैसे लोहे के पर्वत ही चल रहे हो। उस सेना में खुरासान के सुल्तान के सभी दल वुलाए गए थे जो कि अहकार करते हुए आए।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद के पचम चरण में उत्प्रेक्षा तथा छठे चरण में वीप्सा अलकार है।

/पुरासान, सुलतान, पंधार मीरं।
वलप स्यो वलं, तेग अच्चूक तीरं॥
रुहगी, फिरंगी, हलव्वी, समानी।
ठटी ठट्ट वल्लोच, ढाल निसानी॥ ५५॥

शव्दार्थ—पुरासान = खुरासान, वलप = यवनो का देश विशेप, वल = सेना, रुहगी = तुर्को की एक जाति, फिरगी = विलायती, यवन विशेप, हलव्वी = सीरिया देश के निवासी, समानी = अभिमानी।

अनुवाद—खुरासान, मुल्तान तथा कधार के शासक मीर वलख की सेना सहित थे। उनके तलवार और तीर अमोघ थे। गर्वीले, रुहगी, फिरगी, हलवी और वलोचो के भारी समुदाय थे जिनके पास ढालें और झुण्ड थे।

मजारी-चषी, मुष्प जवुक्क लारी।
हजारी हजारी हुकैं जोध भारी॥
तिनं पष्पर, पीठ हय जीन साल।
फिरगी कती, पास, सकलात नाल॥ ५६॥

शब्दार्थ—मजारी = मार्जारी, बिल्ली, चषी = चक्षु वाले, जंबुक्क = जंबुक, सियार, लारी = लोमडी, हुँकैं = हुँकार करते हैं, पष्पर = युद्ध में हाथी घोडो पर डाली जाने वाली लोहे की झूल, साल = अलकृत, कती = छुरे, पास = पाश, मुकलान नाल = कलात देश की तोपें।

अनुवाद—उनकी आखें बिल्ली सी थी और मुख गीदड तथा लोमडी के थे। इस सेना में ऐसे ऐसे योद्धा हैं जो सहस्रो शत्रुओ को जीतने मे समर्थ हैं। उन्होंने अपने घोडो की पीठ पर पाखुर जीनें और शालें डाली हुई थी। उनके पास फिरग देश की कटारें और कलात की सुन्दर तोपें थीं।

तहाँ बाग बाधं मरूरी रिछोरी।
घनं सार सम्मूह, अरु चौर झोरी॥
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी।
तुरक्की महावाँन कम्माँन वाजी॥ ५७॥

शब्दार्थ—बाग = वाग-डोर, बाध = बधी हुई, मरूरी = मरोट कर, रिछोरी = रिञ्छोली, मोतियो की लडी, घन = घने, सार सम्मूह = लोहे (शस्त्र) का समूह, चौंर = चवर, झोरी = सामान रखने के झोले, एराकी, अरब्बी, पटी, ताजी, तुरक्की = घोडों की जातियाँ, वाजी = वाज, घोडे।

अनुवाद—उन घोडो की वागो में मोती-मालाए सजा कर बाधी हुई थी। उन पर लोहे के शस्त्रास्त्रो का भार था, चवर लगे थे और झोले पडे थे। वहाँ इराकी, अरबी, पटी, ताजी, तुरकी जातियो के शीघ्रगामी घोडे थे जिन पर धनुष और बडे बडे बाण पडे हुए थे।

इसे अस्सि असवार अग्गोल गोलं।
भिर जून जेते सु तेते अमोल॥
तिनं मद्धि साहाब सुलतॉन आयं।
इसे रूप सों फौज बरनाय जाय॥ ५८॥

शब्दार्थ—इसे अस्सि असवार = ऐसे अस्सी असवार, अग्गोल गोल =

आगे के गोल (पंक्ति) में, जून = जीर्ण, पुराना परन्तु यहाँ जवान, वरनायो जाय = वर्णन की जाती है।

अनुवाद—इस प्रकार के अस्सी सवार आगे की पंक्ति में स्थित हैं। जितने भी जवान युद्ध में आगे बढ़ते हैं वे सब के सब अपनी सेना के अनमोल रत्न हैं। सुलतान शहाबुद्दीन स्वयं उनके बीच में स्थित हैं। कवि का कथन है कि इस सेना का वर्णन इसी रूप मे किया जा सकता है।

तिन घेरिय राज प्रथिराज राजं।
चिहौं ओर घनघोर नीसॉन वाजं ॥ ५६ ॥

अनुवाद—उन्होने राजा पृथ्वीराज को घेर लिया। चारो तरफ नगाडो की अति उच्च ध्वनि होने लगी।

वज्जिय घोर निसॉन रान चौहान चहौं दिसि।
सकल सूर सामन्त समरि वल जंत्र मत्र तिस ॥
उट्ठि राज प्रथिराज वाग मनौ लग्ग वीर नट।
कढ़त तेग मन वेग लगत मनौं वीजु झट्ट घट ॥
थकि रहे सूर कौतुग गगन रगन मगन भइ स्रोन धर।
हदि हरपि वीर जग्गे हुलसि हुरेउ रंग नवरत्त वर ॥ ६० ॥

शब्दार्थ—समरि = स्मरण कर, वलजत्र मत्र = वल रूपी यत्र मत्र, तिस = उसका, वीजु = विद्युत, घट = घटा, सूर = सूर्य, कौतिग = कौतुक, रगन-मगन = रगीन, हुरेऊ = स्फुरित हुआ, रत्त = रक्त।

अनुवाद—नगाडे जोर-जोर से वजने लगे। सारे वीर सरदार पृथ्वीराज के वल को जत्र-मत्र के समान अचूक समझ कर उसके चारों ओर एकत्र हो गए। राजा पृथ्वीराज ने उछल कर घोडे की वाग पकडी जैसे कोई वीर नट हो। उन्होने मन की गति से जब तलवार निकाली तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे मेघो घटा में विजली कौंध गई हो। अद्भुत खेल देखने को आकाश में सूर्य रुक गया। पृथ्वी रुधिर के रग में रग गई। वीरो के हृदय हर्ष और उल्लास से पूर्ण हो गए और रक्त का सुन्दर रग उनके शरीर में चमकने लगा।

टिप्पणी—प्रस्तुत कवित्त वीर व्यञ्जना का सुन्दर उदाहरण है। पहले दो चरणों में वृत्यानुप्रास की छटा दर्शनीय है तो तीसरे चौथे चरण में उत्प्रेक्षा व उपमालकार की शोभा सुन्दर बन पडी है।

हुरेउ रंग नव रत्त वर, भयेऊ जुद्ध अति चित्त।
निस वासर समुझि न परत न को हार नह जित्त ॥ ६१ ॥

शब्दार्थ—चित्त = विचित्र, वासर = वासर, दिन।

अनुवाद—नए रक्त का सुन्दर रग उनके शरीर में झलकने लगा। बहुत अद्भुत सग्राम हुआ। दिन रात का भेद न सूझना था और न यही पता चलता था कि कौन हारा, कौन जीता।

न को हार नह जित्त रहे रहहिं सूर वर
धर उप्पर भर परत करत अति जुद्ध महाभर।
कहीं कमध, कहौं मथ्थ, कहौं कर, चरन, अन्तररि।
कहौं कन्ध वह तेग, कहौं सिर जुट्टि फुट्टि उर॥
कहौं दन्त मन्त हय पुर पुपरि कुम्भ भ्रसुण्डह रुण्ड सब।
हिंदवॉन रान भय भॉन मुख गहिय तेग चहुआँन जब ॥ ६२ ॥

शब्दार्थ—रहेर न रहहि = रहा नही जाता, धर = धरा, पृथ्वी, भर = भट्ट, महाभर = महाभट, कमध = कबध, धड, मथ्थ = मस्तक, कर = हाथ, अन्तररि = अन्तडी, वह = चलती है, जुट्टि फुट्टि = टकरा कर फूटते हैं, पत-मत = मत्त हाथी, हय = घोडे, पुर पुपरि = खुर और खोपडी, कुभ = हाथियो के मस्तक का गोल उभरा हुआ भाग, भ्रसुण्डह = मूड, रुण्ड = धड, भॉन = भानु, सूर्य।

अनुवाद—वह युद्ध इतना विचित्र था कि, किसी की जय-पराजय का पता न चलता था। न कोई सूरमा बचे और न बचेंगे। वे महा भयकर युद्ध कर रहे थे और पृथ्वी पर घायलो और मृतको का भार पटता जाता था। कही केवल धड पडे थे और कही सिर। कही हाथ-पाँव और कहीं आँतें। कहीं बैरियो के कधे पर खड्ग चलते हैं। कही सिर परस्पर टकराते हैं।

वरि गोरी पदमावती गहि गोरी सुलतॉन ।
निकट नगर दिल्ली गये चत्रभुजा चहुवॉन ॥ ६८ ॥

अनुवाद—पृथ्वीराज चौहान पद्मावती सुन्दरी को वरण करके और गोरी सुल्तान को पकड़ कर दिल्ली नगर के निकट चत्रभुजा (चतुर्भुजी देवी का कोई स्थान विशेष) पहुँच गए।

बोलि विप्र सोधे लगन्न सुभ घरी परट्ठिय ।
हर बॉसह मण्डप बनाय करि भॉवरि गठिय ॥
ब्रह्म वेद उच्चरहिं होम चौरी जु प्रत्ति वर ।
पदमावति दुलहिन अनूप दुलह प्रथिराज राज नर ॥
डड्यो साह साहाबदीं अट्ठ सहस हय वर सुवर ।
दै दॉन मॉन षट् भेप को चढ़े राज द्रग्गह हुजर ॥ ६६ ॥

शब्दार्थ—परट्ठिय = प्रतिष्ठापित की, निश्चित की, हर = हरे, गढिय = ग्रथि बन्धन, भँवरि = विवाह सम्बन्धी अग्नि प्रदक्षिणा, ब्रह्म = ब्राह्मण, चौरी = वेदी, जु प्रत्तिवर = वर प्राप्ति का स्थान, डड्यो = दण्डित किया, हयवर = श्रेष्ठ घोड़े, सुवर = अत्यन्त श्रेष्ठ, षट्भेप = छ प्रकार के दानपात्र, यति, योगी, ब्राह्मण, सन्यासी, चारण, जगम, द्रग्गा हुजर = सामने दुर्ग पर।

अनुवाद—पृथ्वीराज ने ब्राह्मण को बुलवा कर विवाह का लग्न निकलवाया और मागलिक मुहूर्त्त निश्चित किया। हरे बांसो का मण्डप बनवा कर यज्ञ-कुण्ड, प्रदक्षिणा और ग्रंथि बधन की रीतियाँ पूरी की। ब्राह्मण वेद मत्रो का पाठ कर रहे थे। यज्ञवेदी पर जो वर प्राप्ति का स्थान था वहाँ अनुपम वधू पद्मावती और वीरवर राजा पृथ्वीराज शोभायमान थे। उस श्रेष्ठ वीर पृथ्वीराज ने शाहबुद्दीन बादशाह को आठ हजार उत्तम घोड़े दण्ड रूप में देने की आज्ञा दी और छ प्रकार के दान-पात्रो का यथोचित सम्मान देकर सामने अपने दुर्ग में चढ गए।

टिप्पणी—इस कवित्त से तत्कालीन वैवाहिक रीति रिवाजो और सामाजिक अवस्था की एक झाँकी दिखाई पड़ती है।

चाढय राज प्रथिराज छॉड़ि साहावदीन सुर।
त्रिपत सूर-सामन्त, वजत नीसाँन गजत धुर॥
चन्द-वदनि म्रिग-नयनि कलस ले सिर सनमुप जुप।
कनक धार आरति वनाय मोतिन वॅधाय मुप॥
मण्डल मयंक वर नार सव आनन्द कण्ठह गाइयउ।
ढोरत चॅवर किक्कर करहि मुकुट सीस तिक जू दियउ॥ ७० ॥

शब्दार्थ—त्रिपत = तृप्त हुए, सनमुप = सन्मुख, सम्मुख, जुप = योषित, स्त्री, तिक् = प्रखर कांति का, करहि = हाथ मे।

अनुवाद—वीर शाहबुद्दीन को मुक्त कर राजा पृथ्वीराज अपने दुर्ग पर चढ गए। सव सरदारो ने उन्हे नमस्कार किया और नगाडे उच्च स्वर में वजने लगे। चद्रमुखी एव मृगनयनी स्त्रियाँ सिर पर कलश धर कर सामने आई। सुवर्ण के थालो में मोतियो को भली भाति सजाकर और मधुर स्वर से वे (श्रेष्ठ नारियाँ) वधाई के गीत गा रही थी। जव राजा ने सिर पर मुकुट धारण किया तव सेवक हाथो मे चवर ढुलाने लगे।

टिप्पणी—प्रस्तुत पद में लुप्तोपमा अलकार है।

चढे राज-द्रुग्गह त्रिपति सुमत राज प्रथिराज।
अति अमन्द आनन्द मे हिन्दुवाँन सिर-ताज॥ ७१ ॥

शब्दार्थ—राज-द्रुग्गह = राजदुर्ग, सुमत = बुद्धिमान, अमंद = तीव्र, सिरताज = शिरोमणि।

अनुवाद—हिन्दुओ के परमपूज्य महाराज पृथ्वीराज आनन्दपूर्वक राजदुर्ग पर चढ गए।

थकि रहे सूर मोतिघ गिगत, रंगन मगन भयश्रोत धर।
हदि हरपि वीर जग्गे हुलसि, दुख रग नवरत नर॥
(दिल्ली वि० १६५४, आगरा १६४८, राजपूताना १६५५)

३. कुट्टिल केस सुदेस पोहप रच्चियत पिक्क सद।
कमल गध वय सध हस गति चलत मद मंद॥
सेत वस्त्र सोहे सरीर नख स्वाति बूँद जस।
भमर भवति भुल्लहि सुभाव मकरंद वास रस॥
नैन निरखि सुख पाय सुक यह सुदिन्न मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत मिलहि राज प्रथिराज जिय॥

(आगरा वि० १६४६, ५२)

४. घन निसान बहु साद, नाद सुरपच बजत दिन।
दस हजार हय चढ़त, हेम नग जटित साजतिन॥
गज असष गज पतिय, मुहर सेना तिय सपह।
इक नायक कर धरी पिनाक धरमर रज रप्पह॥
दस पुत्र पुत्रिय एक सम, रथ सुरंग उंभर डमर।
भंडार लछिय अगनित पदम सो पदमसेन कुंवर सुधर॥
(आगरा १६५०)

५. प्रिय प्रिथराज नरेस जोग लिपि कग्गर दिन्नौ।
लगुन विरग रचि सरन दिन द्वादस ससि लिन्नौ॥
सें अरु ग्यारह तीस साप सवत् परमानह।
जोवित्री कुल सुद्ध वरनि वर रप्पहु प्रानह॥
दिप्पत दिष्ट चह वरियवर इक पलक विलब न करिय।
अलगार रयन दिन पत्र महि ज्यों रुकमनि कन्हर वरिय॥
(आगरा वि० १६५०, ५३)

६ न को हार नह जित्त, रहेइ न रहहि सूरवर।
धर उप्पर भर परत करत अति जुद्ध महाभर॥

कहौं कमध कहौं मरध कहौं कर चरन अंतसरि।
कहौं कंधि वहि तेग; कहौं सिर जुहि वुहि उर॥
कहौं पंत मत हम पुर पुपरि कभ भ्रसु डह रु ड सव।
हिन्दवान रान भय भॉरमुप गहिय तेग चहुवॉन जव॥
(आगरा वि० १६५१, दिल्ली ५५)

सभरि नरेस सोमेस पूत।
देवंत रूप अवतार धूत॥
सामंत सूर सव्वै अपार।
भूजाँन भीम जिम सार भार॥
जिहि पकर साह साहाव लीन।
तिहुँ वेर करिय पानीय हीन॥
सिंगनि सुसद्द गुन चढ़ि जजीर।
चुक्के न सवद वेधत तीर॥
बल, बैन करन जिमि दान पान।
सत सह्म सील हरिचन्द समान॥
साहस सुक्रम विक्रम जुवीर।
दॉनव सुमत अवतार वीर॥
(आगरा वि० १६५१)

निकट नगर जव जानि वरविध उभय भय।
समुद सिपर घन नद्द उद दुहुँ ओर घोर गय॥
अगिवानिय अगिवान कुँअँर वनि वनि हिय सज्जति।
दिप्पन को त्रिय सवनि चढि गौस छाजन रज्जति॥
विलपि अकस कूँ नरि वदन मनो राह छाया भुरत।
झपति गवप्पि पल पज्ञ पलकि दिपत त ढिल्ली कुपनि॥
(आगरा वि० १६५२)

जिहि पकरि साह साहायलीन।
तिहुँ वेरि करिय पानीप हीन॥

सिंगिनि सुसद्द गुनि चढ़ि जँजीर ।
चुक्कइ न सबद बेधत तीर ॥
साहस सुकम्म विक्रम जु बीर ।
दानव सुमत्त अवतार धीर ॥
दस च्यरि जानि सब कला भूप ।
कँद्रप्प जानि अवतार रूप ॥

(दिल्ली वि० १६५५)

१०. संदेस सुनत आनद नैन ।
उमगीय बाल मन मत्थ सैन ॥
तन चिकट चीर डारयो उतारि ।
मंडान मयक नव सित सिंगार ॥
भूषन मंगाय नष-सिष अनूप ।
सजि सैन मनौ मनमत्थ भूप ॥
सोव्रन्न थार मोतिन भराय ।
झलहल करंत दीपक जराय ॥
संगह सषीय लिय सहस बाल ।
रुकमिनिय जेय लज्जत मराल ॥

(दिल्ली वि० १६५४)

११. भई हूह परताप । पर्‌यौ दिज्यौ अरसी वर ॥
उठ्यौ कढ्ढि तरवारि । दई भुज कन्ह वामकर ॥
इक्क सीह वर ओर । गैर पप्पर गहि डारी ॥
एक अगनिता मद्धि । आनि कंपी घृत धारी ॥
चहुआन कन्ह अग्गै सुवर । ता पच्छे लोहन दग्यौ ॥
आजुलित सत्त वर वीर मति । वीर वीर रस सौ छग्यौ ॥

(दिल्ली वि० १६५८)

परिशिष्ट—३

(सहायक पुस्तकों की सूची)

१ अपभ्रंश काव्य त्रयी—सम्पादक—श्री लालचन्द्र गांधी (१६२७ ई०)।
२ अपभ्रंश साहित्य—डा० हरवंश कोछड़।
३ अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी को योगदान—डा० नामवर सिंह।
४ एनल्स एण्ड ऐंटीक्विटीज़ आफ राजस्थान—कर्नल टाड।
५ कविता कौमुदी भाग-१—रामनरेश त्रिपाठी।
६ काव्य के रूप—बा० गुलाबराय।
७. काव्य दर्पण—रामदहिन मिश्र।
८ काव्य-समीक्षा—श्री सुरेशचन्द्र गुप्त।
६ काशी विद्यापीठ रजत जयन्ती अभिनन्दन ग्रंथ।
१० केशोत्सव स्मारक संग्रह।
११ गद्य-पद्य—श्री सुमित्रानन्दन पन्त।
१२ चन्द्रवरदाई और उनका काव्य—डा० विपिनविहारी त्रिवेदी।
१३ चन्द्रवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो—डा० रामचरण महेन्द्र।
१४ डिंगल में वीर रस—श्री मोतीलाल मनेरिया।
१५ डिंगल कोश—कविराज मुरारिदीन।
१६ पद्मावती समय—श्री विश्वनाथ गौड़।
१७ पृथ्वीराज चरित्र—बा० रामनारायण दूगड़।
१८ पृथ्वीराज रासो—नागरी प्रचारिणी सभा।
१६ पृथ्वीराज रासो—सम्पादक-पं० मथुराप्रसाद दीक्षित।
२० पृथ्वीराज रासो के दो समय—डा० मातांप्रसाद मिश्र।
२१ भूषण ग्रंथावली—नागरी प्रचारिणी सभा।
२२ महाकवि चन्द्रवरदाई और पद्मावती समय—डा० राजेन्द्र शर्मा।
२३ मिश्रबन्धु विनोद भाग-१—श्री मिश्रबन्धु।
२४. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा—श्री मोतीलाल मनेरिया।

२५. रासो की भाषा—डा० नामवर सिंह।
२६ रेवातट—डा० विपिनविहारी त्रिवेदी।
२७ वीर काव्य—डा० उदयनारायण तिवारी।
२८ वीर काव्य-संग्रह—प० भागीरथ प्रसाद दीक्षित।
२९. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—डा० गोविन्द त्रिगुणायत।
३०. संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी व डा०नामवरसिंह।
३१ साहित्यालोचन—बा० श्यामसुन्दर दास।
३२ साहित्य-सुमन—सम्पादक-श्री हरशरण दास 'शरण'
३३ सिद्धान्त और अध्ययन—डा० गुलाबराय।
३४. हिन्दी के कवि और काव्य भाग-१—श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी।
३५ हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण—डा० किरणकुमारी गुप्ता।
३६. हिन्दी के गौरव ग्रंथ—राजकमल प्रकाशन।
३७ हिन्दी नवरत्न—श्री मिश्रबन्धु।
३८ हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप और विकास—डा० शम्भूनाथ सिंह।
३९. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।
४० हिन्दी साहित्य—डा० श्यामसुन्दर दास।
४१ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा।
४२ हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
४३ हिन्दी साहित्य का आदिकाल—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
४४ हिन्दी साहित्य—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी।
४५ हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।

पत्र-पत्रिकाएँ

१ अवंतिका।
२ आलोचना।
३ जरनल आफ एशियाटिक सोसाइटी—बंगाल।
४ नागरी प्रचारिणी पत्रिका।
५ राजस्थान भारती।
६ सम्मेलन पत्रिका।
७ सरस्वती।
८ सरस्वती संवाद।
९ साहित्य
१० साहित्य सन्देश।